VOL. IV PART-II APRIL 1998

JOTI JOURNAL

न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान

उच्च न्यायालय जबलपुर 482007

JUDICIAL OFFICERS' TRAINING INSTITUTE

HIGH COURT OF MADHYA PRADESH

JABALPUR-482007

☎ 325995

स्वयं स्फुर्त बनना है।

दोस्तो,

इस अंक में आपको महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की जा रही है। दैनंदिन जीवन में आरोप निर्मित करना वाद प्रश्न निर्मित करना एक आवश्यक कार्य है। इसके लिए समय भी पर्याप्त लगता है। वाद प्रश्न आरोप प्रत्र किस प्रकार से बनाना यह एक कला है उसके लिए आधारभूत ज्ञान की आवश्यकता होती है। म.प्र. नियम एवं आदेश, सांपत्तिक व दांडिक में भी सिद्धांत प्रतिपादित किए है। उन पर भी न्यायिक अधिकारीगणों को ध्यान केंद्रित करना होता है। गतिशील प्रबन्धन के संबंध में चिन्तन के उपक्रम में ही इन विषयों पर लेख प्रस्तुत किए जा रहे हैं तथा वाद प्रश्नों के एवं आरोप पत्र के प्रारूप तैयार किए गए हैं जो आवश्यकतानुसार परिवर्तित, परिवर्धित करके उपयोग में लाए जा सकते हैं। आरोप प्रारूपों के बीच–बीच में अंतर छोड़ा गया है। जिस कारण आप अपनी ओर से आवश्यक टिप्पणी व संशोधन भी कर सकेंगे। इससे लाभ यह होगा कि बिना समय व्यर्थ व्यतीत किए त्वरित रूप से यह प्रारंभिक कार्य हो सकेगा व बहुमूल्य समय की बचत होगी। जिसका उपयोग न्यायालयों में अधिकाधिक साक्ष्य लिखना, निर्णय देना एवं तत्सम् कार्यो पर किया जा सकेगा। इस विषय पर लेख लिखने व प्रारूप बनाने की प्रेरणा मुझे प्रशिक्षण हेतु सम्मिलित विभिन्न न्यायिक अधिकारियों के द्वारा प्रशिक्षण काल में किए गए प्रदर्शन से प्राप्त हुई कि उन्हें इस विषय में बहुत अधिक मार्गदर्शन चाहिये।

प्रशिक्षण वर्ग में प्रायोगिक रूप से वाद प्रश्न, आरोप निर्मित करने हेतु विभिन्न प्रश्नावलियाँ दी जाती थी। अग्रिम रूप से प्रश्नावलियाँ दी जाती थी। यह भी छूट थी कि न्यायिक अधिकारी अपने अपने निवास स्थान पर व प्रशिक्षण वर्ग में एक दूसरे से चर्चा करें। पुस्तकें देखें व फिर कार्य करें। लेकिन अनुभव सुखद नहीं था। उन्हें बार–बार ऐसा करते रहने हेतु प्रेरित करते रहना पड़ा। कितनी सफलता मिली यह तो समय बताएगा। कष्टदायक व पीड़ादायक स्थिति यह थी कि न्यायिक अधिकारीगण अपने कार्य को पद की गरिमा के अनुसार कार्य नहीं कर रहें थे। हम आप घर में रहते हैं। हमें विद्युत यांत्रिक से ज्यादा महत्वपूर्ण विद्युत लाइनमेन लगता है, जो विद्युत अवरोध में तुरन्त इधर–उधर के तार जोड़कर बिजली चालू कर देता है। विशेषज्ञ डॉक्टर से हमें नर्स ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है जो तुरन्त–फुरन्त दवाई वगैरह का नाम बता देती है तो उसका सेवन कर ठीक–ठाक अनुभव करते हैं। गयाभाव केमिस्ट से भी हम काम चलवा लेते हैं।

हम यह भूल ही जाते हैं न्यायिक अधिकारी होने के नाते हमारे से तकनीकी बातें अपेक्षित हैं। वाद प्रश्न अथवा चार्ज के आधार से पूर्ण प्रकरण का निराकरण प्रभावशाली रूप से होना होता है अतः उस ओर उपेक्षावृत्ति प्रकरण पर न केवल विपरीत प्रभाव डालती है अपितु निराकरण में देरी होती है। पीठासीन अधिकारीगणों को हर प्रकार की छूट पुस्तक देखने व आपसी चर्चा की देने के पश्चात् भी उन्होंने वाद प्रश्न या आरोप अंदाज से ही बनाए, अपनी आदत मिजाज स्वभाव से वे मुक्त नहीं हो पाए। उनका कार्य प्रदर्शन सतत् रूप से आभास दिलाने का था कि वे तो हर दृष्टिकोण से ज्ञाता हैं व समझने के लिए कुछ भी शेष नहीं है। वे यह समझते रहे हैं कि ये काम तो अत्यंत मौज मस्ती के हैं व ऐसा कार्य तो चुटकियों से किया जाता है। और यहीं वे मात खाते हैं। (By the work one knows the work man) एक सत्र में माननीय प्रशासनिक न्यायाधिपति एवं अध्यक्ष, न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान की उच्च न्यायालयीन कमेटी श्रीमान एस.के. दुबे साहेब व माननीय न्यायाधिपति महोदय श्रीमान दीपक मिश्रा साहेब ने अपने उद्‌बोधन द्वारा न्यायिक गुणवत्ता की त्रासदी के संबंधी अत्यंत रोचक बातें प्रस्तुत की थी। सार रूप में उनका कहना था किं न्यायिक अधिकारीगणों में पठन पाठन का अत्यंत अभाव है। सेवा के प्रारंभ से ही वे एक अवगुण से ग्रसित होते हैं कि बिना पठन पाठन के ही अंदाज से कार्य करने की प्रवृत्ति विकसित कर लेते हैं व ऐसी प्रवृत्ति सेवा के अंत तक बनी रहती है। माननीय न्यायाधिपति श्रीमान दीपक मिश्रा साहेब ने पठन–पाठन के संबंध में गहन बात बताते कहा कि जीवन मनोरंजन हेतु भी है तथा जीवन का मनोरंजन पुस्तकें पढ़ने से सबसे अच्छा हो सकता है क्योंकि वे आपके सबसे ज्यादा निकट हैं, निष्पाप मित्र है, प्रतिष्ठापूर्ण हैं व सबसे अच्छी बात यह है कि पठन–पाठन के कारण किसी से राग–द्वेष उत्पन्न नहीं होता है न विवाद होता है और न वे गलत प्रवृत्ति हेतु दुष्प्रेरित करती है। उन्होंने यह भी कहा कि विधि मृत विषय नहीं है अपितु उसे पढ़ने से उर्जा प्राप्त होगी।

हम आप इस बात को अनुभव तो करते है लेकिन इस अनुभव को कृति में क्रियान्वयन में परिवर्तित करने में अपने आप को अक्षम अनुभव करते हैं। सुधार के लिए हमें ईश्वर कृपा से उत्तम मार्गदर्शक मिलें हैं उसका उपयोग हम आप नहीं करेंगे तो हमारा स्तर ऊंचा नहीं उठेगा। हम विधि वैज्ञानिक नहीं बनेंगे केवल विधि मिस्त्री बनकर रह जायेंगे। ऊंचे स्वप्न निद्रावस्था में देखे जा सकते हैं लेकिन जागृत अवस्था में ही उनकी परिणति होगी।

कितना अच्छा होगा यदि हमारे से अपेक्षित कृत्य किसी के निर्देश या इच्छानुसार नहीं अपितु स्वयं की सजगता तथा स्वतंत्रता से प्रस्फुटित होंगे।

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

उज्ज्वल छवि

१९६७ में चयनित व्यवहार न्यायाधीश वर्ग–२ के तृतीय शाखा के प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारीगणों का प्रशिक्षण सत्र प्रारंभ हुआ। माननीय मुख्य न्यायाधिपति श्रीमान ए. के. माथुर साहेब का प्रतिष्ठापूर्ण आगमन संस्था के प्रशिक्षण वर्ग में हुआ। आपका उत्कृष्ट एवं तेजपूर्ण संबोधन द्वारा न्यायिक अधिकारियों को मार्गदर्शन प्रदान किया गया। सूत्रबद्ध शैली में उन्होंने अत्यंन्त सारगर्भित बात प्रतिपादित करते हुए कहा कि बार–बार यह कहने की बात रहेगी कि न्यायिक अधिकारी गणों ने ईमानदारी, निष्ठा व चरित्र उच्च कोटि का बनाकर रखना होगा। यदि उनकी छवि धवल शुभ्र कांतिमय होगी तो वे न्यायपालिका की छवि को महिमापूर्ण रख सकेंगे। न्यायदान एक दैविक कार्य है अतः वह उसी भावना व आस्था एवं आदर से निष्पादित किया जाना चाहिये। माननीय ए.के. माथुर साहेब ने यह भी कहा कि न्यायाधीश के रूप में नियुक्ति वास्तव में ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में ईश्वर ने न्यासी बनाकर की है अतः न्यासी का कार्य विश्वास पर टिका है। यदि न्यायिक अधिकारी उस विश्वास को बनाएं रखेगें तो निश्चित ही सर्वसाधारण में न्याय के प्रति और अधिक विश्वास जाग्रत होगा। मुख्य न्यायाधिपति महोदय ने कहा कि यह न्यूनतम अपेक्षा प्रत्येक न्यायाधीश से है। यदि ऐसा नहीं होता है तो प्रशासनिक व्यवस्था के माध्यम से कदाचरण के विषय में ध्यान दिया जाता है। आपने आगे यह भी कहा कि विधि क्षेत्र एक समुद्र के अनुरूप है उसमें आप थाह नहीं पा सकते अतः जो व जितना भी कार्य करो वह गुणवत्ता से भी होना चाहिये। श्रीमान माथुर महोदय का यह भी कहना था कि ईमानदारी व निष्ठा का अर्थ यह है कि कार्य के प्रति समर्पण भाव होगा व साथ ही कार्य में गुणवत्ता व पूर्णता की ओर सतत् प्रयत्न करना है। माननीय माथुर साहेब से विभिन्न पहलुओं पर न्यायिक अधिकारीगणों को आने वाली दैनदिन कठिनाईयों के संबंध में चर्चा की। सारभूत रूप से मुख्य मुद्दे जो सामने आए वे थे साक्षियों का न्यायालय में न आना एवं अधिवक्तागणों द्वारा प्रकरणों के निराकरण में देरी करना है। आपने यह सुझाव भी दिया कि पीठासीन अधिकारीगणों ने स्वयं ने यह देखना चाहिये कि साक्षियों के समन्स निर्गमित होने हैं या नहीं व उचित रूप से निर्वाहित होते हैं या नहीं। केवल आदेशिकाएं लिखने मात्र से समन्स निर्गमित व निर्वाहित नहीं होंगे अपितु उसके लिए सतत् रूप से प्रयत्नशील रहते दृढ़ रहना होगा व सतत् आग्रह पद्धति से उक्त कार्य का वास्तविकता में परिणित करना होगा। जहां तक अधिवक्ताओं द्वारा प्रकरण में देरी

करने का प्रश्न था मुख्य न्यायाधिपति श्रीमान माथुर साहेब ने यह भी कहा कि प्रक्रिया संबंधी दोष यदि है तब भी पीठासीन अधिकारीगणों का विधि का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये ताकि अधिवक्तागणों के द्वारा की जाने वाली देरी को विधि सम्मत प्रक्रिया द्वारा ही गुणवत्ता के आधार से कम किया जा सके लेकिन इसके लिए यह अपेक्षा रहेगी की न्यायिक अधिकारी स्वयं प्रक्रिया संबंधी एवं सारवान विधि से अभिज्ञ हो। अपने अनुभव के सहारे ऐसी देरी को रोका जा सकता है ऐसा विश्वास भी उन्होंने जताया व उक्त सत्र के लिए विचारों का समापन किया।

माननीय प्रशासनिक न्यायाधिपति महोदय श्रीमान ए.के. दुबे साहेब ने सत्र के अवसान के अवसर पर अनुभवशील विद्वत विचारों से अभिसिंचित करते यह प्रतिपादित किया कि पीठासीन अधिकारी आते जाते रहेंगे लेकिन न्यायपीठ की प्रतिष्ठा ऊंची व कायम रखने की जिम्मेदारी व दायित्व उनका है। प्रतिष्ठा ऊंची रखने हेतु पीठासीन अधिकारीगणों को स्वयं को विधि क्षेत्र में ज्ञाता होना पड़ेगा विभिन्न न्याय दृष्टांत, पूर्वोक्तियां व विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान से सुसज्जित रहना पड़ेगा जिससे न्यायिक कार्य संचालन में यथोचित गति आवे। न्यायिक अधिकारीगणों का कर्त्तव्य उनके ऐसे अधिकारीगण होने के नाते ही नहीं अपितु एक नागरिक होने के नाते भी है। अतः प्रत्येक स्थिति में कर्त्तव्य की उपेक्षा भूल होगी।

श्रीमान दुबे साहेब का जोर मुख्य रूप से इस बात पर भी रहा कि न्यायिक अधिकारीगणों का व्यवहार शिष्टतापूर्ण हो, सुसंस्कृत हो ऐसा लगे कि वे केवल शासकीय सेवक मात्र नहीं है अपितु न्यायदान जैसा पवित्र कार्य करने वाले निर्मोही व्यक्ति जैसा है। उनका यह भी कहना था कि न्यायाधीश का पद सामान्य शासकीय सेवक से भिन्न इस दृष्टिकोण से है कि सामान्य जन न्यायाधीश के पद को सेवाभिमुख पद के रूप में मानता है अतः न्यायाधीश का लक्ष्य सेवा करने का होना चाहिये चाकरी करने का नहीं। न्यायाधीश के रूप में सेवा करने के विचार को विस्तार देते हुए माननीय प्रशासनिक न्यायाधिपति श्रीमान एस.के. दुबे ने कहा कि पीठासीन अधिकारीगण ने स्वयं यह देखना है कि उसके द्वारा आदेशिका के माध्यम से दिए आदेशों का पालन हुआ है या नहीं, यदि नहीं हुआ है तो उसका पालन कराया जाना चाहिये। साक्ष्य लिपिबद्ध होते समय उसे अपने निर्देश में लिपिबद्ध किया जाना होता है। जो कार्य जिस तिथि के लिए निर्धारित है उसे उसी तिथि पर किया जाना चाहिये। प्रकरणों में पूर्व तैयारी करके न्यायालय में आना चाहिये। अपने समापन संबोधन के अंत में श्रीमान दुबे साहेब ने यह अपेक्षा की कि न्यायिक अधिकारी न्यायपालिका की प्रतिष्ठा ऊँची रखने हेतु अपना जीवन समर्पित कर देंगे।

NOTICE : UNDER SECTION 138 N.I. ACT

P.V. NAMJOSHI

After amendment of some sections of the Negotiable Instruments Act (N.I. Act)some penalties in case of dis-honour of certain cheques for insufficiency of funds in the accounts are provided for and now the dishonour of cheque is treated as an offence. From 01-04-1989 a person issuing a cheque will be committing offence if the cheque is dishonoured for insufficiency of funds in his account. Section 138 Proviso B runs as under :-

> "the payee or the holder in due course of the cheque, as the case may be, makes a demand for the payment of the said amount of money by **giving a NOTICE IN WRITING, to the drawer** of the cheque, within fifteen days of the receipt of information by him from the bank regarding the return of the cheque as unpaid."

What type of notice, is to be served on the drawer is a question to be considered. The term notice has been defined in several Acts. The term 'Notice' in its full legal sense embraces a knowledge of circumstances that ought to induce suspicion or belief, as well as direct information of the fact. In the popular sense notice is equivalent to information, intelligence or knowledge. Notice is a direct and definite statement of a thing as distinguished from supplying materials from which the existence of such thing may be inferred. ***(per Parke B. Burgh Vs. Lege, 5 M&W 420; 8 LJ Ex. 258.)***

Section 3 of the T.P. Act also defines the word "Notice" and the Trust Act also defines the word "Notice". In this connection notice, in its legal sense, may be defined as "information concerning a fact actually communicated to a party by an authorised person, or actually derived by him from a proper source, or else presumed by law to have been acquired by him, which information is regarded as equivalent to knowledge in its legal consequences."

Notice is the making something known, of what a man was or might be ingnorant of before. And it produces divers effects, for, by it, the party who gives the same shall have some benefit, which otherwise he should not have had; the party to whom the Notice is given is made subject to some action or charge, that otherwise he had not been liable to; and his estate in danger of prejudice. (Co. Lit. 309 Tomlins Law Dic.)

Impulsively attention is attracted to the provisions of Section 27 of the General Clauses Act. Section 27 of the General Clauses Act, 1897 (Central Acts) deals with this subject matter. Section 27 of General Clauses Act reads as under :-

> "**Meaning of Service by post :-** Where any Central Act or regulation made after the commencement of this Act authorized or requires any document to be served by post, whether the expression 'give' or 'send' or any other expression is used, then unless a different intention appears, the service shall be deemed to be effected by properly addressing, prepaying and posting by registered post, a letter containing the document, and, unless the contrary is proved to have been effect at the time at which the letter would be delivered in the ordinary course of post."

A distinction has been made regarding the applicability of Section 27 of the General Clauses Act in cases relating to Negotiable Instruments Act.

Under Section 27 of the General Clauses Act notice should be posted by registered post where as under Section 138 of the N.I. Act registered notice is not expected to be served on the drawer of the cheque. A notice in writing is required to be sent to the drawer. Such a notice must be posted through the dak of post office or even by courier or by hand delivery. A reference may be made to ***Revathi Vs. Asha Bagree 1992 (1) Crimes 743 (744)*** Kerala High Court in which it was held that Section 138 (b) N.I. Act stipulates only "notice in writing" and not "notice by registered post" or even "notice by post". Therefore, according to Kerala High Court Section 27 of the General Clauses Act is not applicable to notice under Section 138 (b) of the Act, and hence a notice there under could be sent not only by registered post but also by telegram or a letter. ***In Jagarlamudi Surya Prasad Vs. State of A.P. 1992 Cr.L.J. 597 (599) = 1991 (3) Crimes 832*** it was held that the complainant had given notice by registered post as well as by certificate of posting but the petitioners/accused has evaded receiving notices. Therefore it was "sufficient compliance" with Section 138 (b) of the Act. Hon'ble Justice Raju, J. also added that the general presumption that a person who refuse to receive a notice or returns a notice is deemed to be served with that notice, would apply in this case also. What is required is there is adequate proof of the notice having been sent and having been served or of the notice admitted to have been served but evaded by the person concerned. It is not requirement of the law that it must be received by the addressee.

A cheque was drawn by a private limited company and it was dishonoured. The cheque was signed by the Director on behalf or the company. Notice to the company itself is sufficient and no separate notice to the Director was necessary. ***[Dilip Kumar Vs. Deb Priya 1992 (1) Crimes 1233 (1237)].***

So far as constructive notice is concerned Law is also very clear. Notice in writing would also include a necessary and appropriate attempt to serve the notice which is foiled or defeated by a deliberate evasion there of by a person to be served with notice. In, ***S. Prasanna Vs. R. Vijaya Lakshmi 1992 Cr.L.J. 1233*** and ***1992 (1) Bank C.L.R. 20*** it was found that in the complaint it is stated that the accused deliberately evaded receipt of registered notice. This would amount to his knowledge that such a notice was sent by the complainant and deliberate refusal of the same. This would amount to the constructive notice. The very purpose of the Act cannot be thuwarted by simply refusing the notice. Refusal to accept the notice appears to have been treated a compliance with Clause (b) of Section 138 of the Act. In ***Jagarlamudi Surya Prasad Vs. State of A.P. 1992 Cr.L.J. 597 (599)*** it was further held that a period of 15 days mentioned in Clause (c) of Section 138 should be counted from the date on which the complainant receives back the notice through post whether with proper service or on the ground of "not found" or "refuse to accept" etc. etc. Where the notice is sent by certificate of posting the period of 15 days should start form the date on which the notice by certified post is reasonably expected to reach the accused and when the notice is sought to be personally served upon the accused and is either accepted or refused by him the counting of the period should start from the date of such acceptance or refusal by the accused

person. (Commentary by Dr. P.W. Rege on Law of negotiable Instrument Act. An A.I.R. Publication 1994 Edition page 1020.)

In ***A.B. Steels Vs. Coromandel Steel Products (1992) 74 Company Cases 762 (Mad.)*** it was found that a cheque was dishonoured and a registered notice was sent back by the addressee with remarks "addressee not found". On its receipt back the payee went to the drawers business premises asking him to take notice which the drawer refused. A complaint was filed and the drawer filed a petition for quashing the complaint. It was held that the petitioner/accused was aware of the sending of the notice by respondent and his deliberate avoidance in receiving it amounted to constructive service of notice. In ***K. Madhu Vs. Omega Pipes Ltd. (1995) 85 Comp. Cases 263 (Ker.)*** it was held that :

> "In terms of clause (b) of the proviso to sec. 138, Negotiable Instrument Act, 1881, the drawer of the cheque is given fifteen days from the receipt of the said notice for making payment. This affords a clear indication that 'giving notice' in the context is not the same as receipt of notice. Giving is the process of which receipt is the accomplishment. The realistic interpretation of the expression 'giving notice' in the present context is that, if the payee has despatched the notice to the correct address of the drawer reasonably ahead of the expiry of fifteen days, it can be regarded that he made the demand by giving notice within the statutory period and any other interpretation is likely to frustrate the purpose for providing such a notice. The Court added that a liberal interpretation is needed in favour of the person who has the statutory obligation to given notice since he is presumed to be the loser in the transaction and for whose interest the very provision is made."

Attention is invited to Sections 91 to 98 of the Act which deals with notice of dishonour. In ***AIR 1956 Raj. 129 (relevant page 136 para 23) Kanhayyalal Vs. Ram Kumar,*** it is held that the giving of a notice of dishonour is a part of the plaintiff's cause of action and is a condition precedent for making the endorser liable and in the absence of such notice his liability to the endorser must stand extinguished.

It was further held in para 21 (11) that, in the first place it is extremely difficult to accept that as a notice of dishonour because the object of a notice of this description is not to demand payment but clearly to indicate to the party notified that the contract arising on the negotiable instrument has been broken by the principal debtor and that the former being a surety will now be liable for the payment. This is the principle embodied in S. 93 of the Negotiable Instrument Act.

Attraction of the readers is also invited to the most important ruling by the apex Court in ***M/s. Madan and Co. Vs. Vajheer Jai Veerchand A.I.R. 1989 SC 630*** particularly to paragraph 6 of the judgment. It is reproduced here for ready reference. Hindi version of paragraph is also reproduced with the help of Shri Priyadarshan Sharma, Civil Judge Class II, Sagar. For this I express my courtesy.

We are of opinion that the conclusion arrived at by the Courts below is correct and should be upheld. It is true that the proviso to Cl. (i) of S. 11 (1) and

the proviso to S. 12 (3) are intended for the protection of the tenant. Nevertheless it will be easy to see that too strict and literal a compliance of their language would be impractical and unworkable. The proviso insists that before any amount of rent can be said to be in arrears, a notice has to be served through post. All that a landlord can do to comply with this provision is to post a prepaid registered letter (acknowledgment due or otherwise) containing the tenant's correct address. Once he does this and the letter is delivered to the post office, he has no control over it. It is then presumed to have been delivered to addressee under S. 27 of the General Clauses Act. Under the rules of the post office, the letter is to be delivered to the addressee or a person authorised by him. Such a person may either accept the letter or decline to accept it. In either case there is no difficulty, for the acceptance or refusal can be treated as service on, and receipt by, the addressee. The difficulty is where the postman calls at the address mentioned and is unable to contact the addressee or a person authorised to receive the letter. All that he can then do is to return it to the sender. The Indian Post Office Rules do not prescribe any detailed procedure regarding the delivery of such registered letters. When the postman is unable to deliver it on his first visit, the general practice is for the postman to attempt to deliver it on the next one or two days also before returning it to the sender. However, he has neither the power nor the time to make enquiries regarding the whereabouts of the addressee; he is not expected to detain the letter until the addressee chooses to return and accept it; and he is not authorised to affix the letter on the premises because of the assessee's absence. His responsibilities cannot, therefore, be equated to those of a process server entrusted with the responsibilities of serving the summons of a Court under O.V. of the C.P.C. The statutory provision has to be interpreted in the context of this difficulty and in the light of the very limited role that the post office can play in such a task. If we interpret the provision as requiring that the letter must have been actually delivered to the addressee, we would be virtually rendering it a dead letter. The letter cannot be served where, as in this case, the tenant is away form the premises for some considerable time. Also, as addressee can easily avoid receiving the addressed to him without specifically refusing to receive it. He can so manipulate matters that it gets returned to the sender with vague endorsements such as "not found", "not in station", "addressee has left" and so on. It is suggested that a landlord, knowing that the tenant is away from station for some reason, could go through the motions of posting a letter to him which he knows will not be served. Such a possibility cannot be excluded. But, as against this, if a registered letter addressed to a person at his residential address does not get served in the normal course and is returned, it can only be attributed to the addressee's own conduct. If he is staying in the premises, there is no reason why it should not be served on him. If he is compelled to be away for some time, all that he has to do is to leave necessary instructions with the postal authorities either to detain the letters addressed to him for some time until he returns or to forward them to the address where he has gone, or to deliver them to some other person authorised by him. In this situation, we have to chose the more reasonable, effective, equitable and practical interpretation and that would be to read the word "served" as "sent by post", correctly and properly addressed to the tenant,

and the word "receipt" as the tender of the letter by the postal peon at the address mentioned in the letter. No other interpretation, we think, will fit the situation as it is simply not possible for a landlord to ensure that a registered letter sent by him gets served on, or is received by, the tenant.

It is apposite to note that the wording in clause (b) of the proviso for Section 138 "a demand for payment of the said amount of money by giving a notice in writing to the drawer of the cheque" refers to the cheque amount and not any other amount either smaller or higher than the amount mentioned in the cheque. So the notice need not be given demanding the cheque amount. If any bigger amount or smaller amount than the cheque amount is mentioned that will create difficulty for the drawee to know how much amount he has to pay and that makes the notice insufficient and vague and the notice will become illegal. ***Gopa Debi Ozha Vs. Surjit Paul, (1995) Cri.L.J. 3412 (Calcutta).***

It will not be irrelevant to state here few definitions regarding different types of notices.

"CONSTRUCTIVE NOTICE" DEFINITIONS OF :

"Legal inference from established facts". "Notice imputed by the law to a person not having actual notice". "Knowledge of such facts as put a prudent man upon inquiry" "Knowledge of such facts as should induce inquiry, and as would lead to inquiry in the case of an ordinarily prudent man and which cannot be neglected without a voluntary closing of the eyes, and conduct inconsistent with good faith"

CONSTRUCTIVE NOTICE AND IMPLIED NOTICE :

Constructive notice differs from implied notice, with which it is frequently confounded, and which it greatly resembles, in respect to the character of the inference upon which it rest; constructive notice being the creature of positive law, rests upon strictly legal presumptions, which are not allowed in the case of implied notice. ***Hayward Vs. Mayse, 1 App. Cas (D.C. 133; 29 Ams. Cyc. 1114).***

NOTICE-ACTUAL AND CONSTRUCTIVE :

Notice is actual, when it is directly and personally given to the party to be notified. Notice is constructive when a party by circumstances is out upon inquiry, and must be presumed to have had notice; or, by judgment of law, is held to have had notice.

As an abstract preposition of law it cannot be laid down that the mere facts that a document is registered earlier is by itself sufficient to fix a subsequent encumbrancer with notice of such a document within the meaning of S. 3 of the T.P. Regulation as it stands. ***15 Mys. L.J. 385=42 Mys. H.C.R. 410,*** See also T.P. Act, S. 3.

To conclude with this Article it is submitted that it is absolutely not necessary that there should be actual service of notice on the drawer as discussed above. Suffice is to sent a notice in writing making a demand of the amount of the cheque and should be given within 15 days of the receipt of the communication from the banker concerning the dishonour of the cheque.

ए.आय.आर. 1989 सु.को. 630 मेसर्स मदन वि. वझिर के दृष्टांत के चरण 6 का हिन्दी अनुवाद

हमारा अभिमत है कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा दिया निष्कर्ष सही है तथा स्थिर रखा जाना चाहिए। यह सही है कि जम्मू काश्मीर हाउसेस ॲण्ड शाप्स रेंट कंट्रोल ॲक्ट की धारा 11 (1) के खंड (i) का परन्तुक तथा धारा 12 (3) का परन्तुक किराएदार की सुरक्षा हेतु आशयित है। फिर भी यह देखा जा सकता है कि उनकी भाषा का अधिक कठोर तथा शाब्दिक अनुपालन अव्यवहारिक तथा अकरणीय होगा। परन्तुक यह अपेक्षा करता है कि उससे पूर्व कि किराए की कोई राशि बकाया (शेष) कही जा सके इस उपबंध का पालन करने के लिए एक भूस्वामी अधिक से अधिक यही कर सकता है कि वह किराएदार के सही पते वाला एक पूर्वदत्त पंजीकृत पत्र (अभिस्वीकृति सहित या अन्यथा) डाक से प्रेषित कर दे। एक बार जब वह कर देता है तथा पत्र डाकखाने में दे दिया जाता है तब उसका उस पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है। तब इस संबंध में साधारण खंड अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्राप्तकर्ता को दिए जाने की उपधारणा कर ली जाती है। पोस्ट ऑफिस के नियमों के अधीन पत्र को प्राप्तकर्ता या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को दिया जाता है। ऐसा व्यक्ति या तो पत्र को स्वीकार कर सकता है या उसे स्वीकार करने से मना कर सकता है। दोनों ही दशाओं में, स्वीकृत या अस्वीकृत को प्राप्तकर्ता द्वारा प्राप्त या उस पर निर्वाहित मानने में कोई कठिनाई नहीं है। कठिनाई वहाँ होती है जहाँ पोस्टमैन दिए गए पते पर पहुंचता है तथा प्राप्तकर्ता या पत्र प्राप्त करने हेतु अधिकृत किसी व्यक्ति से संपर्क करने में असफल रहता है। वह केवल इतना ही कर सकता है कि वह इसे प्रेषक को वापस कर दे। भारतीय पोस्ट ऑफिस नियम ऐसे पंजीकृत पत्रों के वितरण के संबंध में कोई विस्तृत प्रक्रिया उपबंधित नहीं करते हैं। जब पोस्टमैन इसे प्रथम बार में वितरण करने में असमर्थ रहता है तो पोस्टमैन के लिए सामान्य प्रथा यह है कि उसे प्रेषक को वापस करने से पूर्व अगले एक या दो दिन में भी वितरण करने का प्रयास करे। तथापि, उसके पास न तो शक्तियां है न ही समय कि वह प्राप्तकर्ता के अते–पते के संबंध में जाँच कर सके। उससे यह आशा नहीं की जाती है कि वह पत्र को तब तक रोक कर रखे जब तक कि प्राप्तकर्ता उसे स्वीकार करने या वापस करने का चयन न कर ले, तथा वह प्राप्तकर्ता की अनुपस्थिति के कारण भवन पर पत्र को चिपकाने हेतु भी अधिकृत नहीं है। अतएव उसके उत्तरदायित्व की तुलना आदेशिका वाहक से नहीं की जा सकती है जो व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 5 के अधीन समंस के निर्वाह के

दायित्व से निहित रहता है। वैधानिक उपबंधों का निर्वचन इस कठिनाई के संदर्भ में तथा ऐसी स्थिति में पोस्ट ऑफिस द्वारा निर्वाह किए जाने वाले अत्यन्त सीमित भूमिका के प्रकाश में किया जाना चाहिए। जहां किराएदार भवन से पर्याप्त समय के लिए दूर है, जैसा इस प्रकरण में है, वहाँ पत्र को वितरित नहीं किया जा सकता है। साथ ही, कोई प्राप्तकर्ता उसे संबोधित पत्र को विनिर्दिष्ट रूप से अस्वीकार किए बिना प्राप्त करने से बच सकता है। वह मामले को ऐसे जोड़ तोड़ कर सकता है कि वह अस्पष्ट पृष्ठाकन जैसे कि "मिला नहीं", "शहर में नहीं", "प्राप्तकर्ता चला गया" आदि के साथ प्रेषक के पास पुनः पहुंचा सकता है। यह भी हो सकता है कि कोई भूस्वामी, यह जानते हुए कि किराएदार किसी कारणवश शहर से बाहर है, उसे पत्र भेजने का प्रस्ताव कर सकता है जो वह जानता है कि वितरित नहीं होगा। ऐसी संभावना भी अपवर्जित नहीं की जा सकती है। किन्तु, इसके विपरीत, यदि किसी व्यक्ति के निवास के पते से संबोधित कोई पंजीकृत पत्र सामान्य अनुक्रम में वितरित नहीं हो पाता है तथा वापस हो जाता है तो प्राप्तकर्ता के स्वयं के आचरण को आरोपित करेगा यदि वह भवन में निवास कर रहा है तो कोई कारण नहीं है कि इसे उसको वितरित क्यों न किया जावे। यदि वह कुछ समय के लिए दूर रहने के लिए बाध्य होता है तो वह इतना कर सकता है कि वह डाक प्राधिकारियों को आवश्यक निर्देश दे सकता है कि उसे संबोधित पत्र या तो कुछ समय तक, जब तक वह लौटे, रोक लिए जावे या उस पते पर अग्रेषित कर दिए जावे जहां वह गया है या उन्हें किसी अन्य व्यक्ति को, जो उसके द्वारा अधिकृत है, वितरित कर दिया जावे। ऐसी परिस्थिति में हमें सर्वाधिक युक्तियुक्त, प्रभावशाली, सामियक तथा व्यवहारिक निर्वचन का चयन करना होगा जो कि "निर्वाहित" शब्द को "डाक द्वारा प्रेषित" के रूप में पढ़ना होगा। किराएदार को सही तथा उचित रूप से संबोधित होगा तथा शब्द "प्राप्ति" को डाक कर्मचारी द्वारा पत्र में संबोधित पते पर प्रस्तुत करने के रूप में होंगा। हमारा विचार है कि कोई अन्य निर्वचन इस परिस्थिति में उपयुक्त नहीं होगा क्योंकि सामान्यतः एक भू–स्वामी के लिए यह सुनिश्चित करना संभव नहीं होता है कि उसके द्वारा प्रेषित कोई पंजीकृत पत्र किराएदार को वितरित हो या उसके द्वारा प्राप्त किया जावे।

●

"JUST BECAUSE YOU HAVE DONE SOMETHING IN A PARTICULAR MANNER OR WAY FOR YEARS, IT DOES NOT MEAN THAT IT HAS TO BE CONTINUED IN THAT MANNER ONLY."

आरोपों का विचरित किया जाना

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

न्यायिक दडांधिकारी द्वितीय श्रेणी के न्यायाधीश से सत्र न्यायालय के न्यायाधीश के श्रेणी के सभी न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों को अपराधिक प्रकरणों में आरोप (चार्ज) की संचरना करना होती है। आरोपों की विरचना इस प्रकार से होनी चाहिए कि जिससे कि आरोपी अभियुक्त को इस बात का ज्ञान हो सके कि उसके विरुद्ध क्या आरोप है व उसे कौन से आरोपों के विरुद्ध प्रतिरक्षा करना है। अस्पष्ट व संदिग्ध शब्दावली के माध्यम से निर्मित एवं निरूपित आरोपों के आधार से यदि अभियुक्त को पूर्वाग्रह होता है अथवा अस्पष्टता अनुभव होती है तो ऐसे दोषपूर्ण आरोपों के कारण अभियुक्त को वैधानिक लाभ मिल सकता है। ऐसा तब होता है जब पीठासीन अधिकारी जिसे चार्ज निर्मित करने का कर्त्तव्य है उपेक्षा या लापरवाही से या बिना गंभीरता से सरसरी तौर तौर पर सतही रूप से कार्य करके चार्ज लगाता है। न्यायिक अधिकारी के रूप में सतही कार्य करने का न तो औचित्य है न अपेक्षा है। पीठासीन अधिकारी के उपेक्षापूर्ण वृत्ति के कारण यदि आरोपी को कोई लाभ मिल जाता है तो वास्तव में परिवादी के साथ हमारे कृत्य के कारण अन्याय करना कहा जा सकता है। उसी प्रकार यदि किसी गुरूत्तर अपराध के होने का ज्ञात होते हुए भी लघु या गौण अपराध का चार्ज लगा देना भी न्यायिक बेईमानी है। जैसे आरोप 302 भा.द.वि. के अंतर्गत बनता हो तो न्यायिक अधिकारी द्वारा सरसरी तौर पर विचार करके मात्र धारा 304 भाग–1 या भाग–2 में चार्ज लगाना न्यायिक बेईमानी है क्योंकि ऐसा करके हम आरोपी को प्रारंभ में ही धारा 302 भा.द.वि. के आरोप से मुक्त कर रहे हैं। उसी प्रकार धारा 307 भा.द.वि. के अंतर्गत आरोप लगाते समय शब्दावली की ओर ध्यान देना जरूरी है। यदि प्राणघातक उपहति काटने के आयुध से हो तथा उपहति गंभीर प्रकृति की हो तो जिस आयुध का प्रयोग किया गया है उसका खुलासा भी होना चाहिये तथा गंभीर उपहति शब्दों के प्रयोग भी होना चाहिए। केवल यह लिखना पर्याप्त नहीं है कि आरोपी ने प्राणघातक उपहति कारित की। यदि ऐसा मात्र लिखा हो तथा धारा 307 भा.द.वि. के अंतर्गत हत्या कारित करने का आशय सिद्ध नहीं हुआ एवं उपहति मात्र सिद्ध हुई हो तो न्यायालय केवल धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत ही आरोपी को दंडित कर सकेगा। ऐसा इसलिए होगा कि न्यायिक अधिकारी ने कल्पनाओं के आधार से मात्र कार्य किया तथा आरोप रचित करने संबंधी कर्त्तव्य को न्यायालय ने गंभीरतापूर्वक नहीं लिया।

गत दिनों में 1997 के चयनित व्यवहार न्यायाधीशों के प्रशिक्षण सत्र में चार्ज

निर्मित करने की भी एक वर्कशॉप थी जिसमें उन्हें दिए हुए विभिन्न तथ्यों के आधार से चार्ज लगाना था। कक्षा में ही यह कार्य करना था। उन्हें इस बात की अनुमति थी कि वे पुस्तकें देखें तथा अन्य प्रशिक्षणार्थियों से भी पूछ सकेंगे। लेकिन आश्चर्य तब हुआ कि यह सब छूट के रूप में देने पर भी उन्होंने अंदाज से ही चार्ज लगाया। इस बात का प्रयत्न भी नहीं किया कि दंड़ प्रक्रिया संहिता के संबंधित प्रावधानों देखें। यदि यही आदत विकसित हो गई तो हम हमेशा बिना पुस्तक पढ़े अपराध की परिभाषित शब्दावली को जाने बगैर चार्ज निर्मित करेंगे व अनुचित लाभ अभियुक्त को देते रहेंगे। ऐसा कार्य न्यायाधीश के मर्यादाओं के बाह्य है।

कभी कभी आरोप पत्र में साक्ष्य इस प्रकार की होती है कि यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि आरोपी ने कौन सा अपराध किया है अतः वैकल्पिक आरोप भी निर्मित किए जाना चाहिए। जैसे किसी प्रकरण में यह आता है कि आरोपी ने किसी रतनी नाम की महिला की हत्या की तो कुछ साक्षी यह कहते हैं कि उस ने स्वयं घासलेट डालकर जलाकर आत्महत्या कर ली तो कुछ साक्ष्य ऐसी आती हैं कि वह दहेज हत्या है। ऐसी स्थिति में चार्ज निर्मित करने का सुरक्षित मार्ग यह है कि धारा 302 भा.द.वि. वैकल्पिक रूप से धारा 304–बी एवं पुनः वैकल्पिक रूप से धारा 306 भा.द.वि. का आरोप लगाना चाहिए व कुल मिलाकर जो आरोप सिद्ध हो उसमें दंडित कर शेष आरोपों से निर्दोष मुक्त करना चाहिये।

जहां अपराध परिभाषित हो वहाँ अपराध के तत्वों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है जैसे चोरी, रिष्टि, अपराधिक अभित्रास। लेकिन जहाँ अपराध परिभाषित नहीं है वहाँ आरोप के सभी तत्व सामने आना चाहिए। जैसे धारा 353, 332 एवं 333 भा.द.वि. के अंतर्गत आरोप लगाते समय वे सब तत्व आरोप में आऐंगे जिस कारण आरोप पूर्ण होता है। (देखें धारा 211(3) एवं धारा 213 दं.प्र.स.)

जहाँ विशिष्ठ शब्दों का प्रयोग चार्ज में होना है वहाँ वह आवश्यक रूप से दोहराना चाहिये जैसे धारा 294 भा.द.वि. के अंतर्गत अपशब्द आदि का प्रयोग एवं सुनने वालों को उन शब्दों को सुनकर बुरा लगना एवं क्षोभ कारित होना। मानहानि के प्रकरण में उन समस्त शब्दों को दोहराना है जिस के आधार से अपमान होना कहा जाता है अतः मुख्य रूप से धारा 211 द.प्र.स. के प्रावधानों की मूलभूत कल्पना हमारे मस्तिष्क पटल पर सतत रूप से अंतर्भूत होना चाहिये।

किसी आरक्षी केंद्र से प्रस्तुत आरोप पत्र में उल्लेखित धाराओं में मात्र चार्ज लगाया जा सकता है ऐसी बात नहीं है। उभयपक्षों को सुनकर, प्रकरण का अवलोकन कर विचार मंथन कर ही आरोप निर्धारित करना चाहिये। यदि प्रकरण संक्षिप्त सुनवाई

का है तो संक्षिप्त सुनवाई द्वारा, समन्स केस हो तो समन्स प्रक्रिया द्वारा व वारन्ट का प्रकरण हो तो वारन्ट प्रक्रिया द्वारा ही सुनवाई होगी। यहाँ यह समीचीन होगा कि कुछ ऐसे प्रकरण हैं जिसमें संक्षिप्त सुनवाई होती है लेकिन विशेष कारणों से ऐसी सुनवाई नहीं होना चाहिये। इसके लिए म. प्र. अपराधिक नियम एवं आदेश का नियम 137 का शुरू से हीं अध्ययन कर लेना चाहिये।

आरोप निर्मित करते समय यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि यदि एक से अधिक व्यक्तियों को उपहति कारित हुई है तो उस प्रत्येक व्यक्ति के विषय में जिसे उपहति हुई है के संबंध में आरोपी के विरुद्ध आरोप लगेगा व प्रत्येक बार धारा का उल्लेख भी होगा। जैसें रामलाल व श्यामलाल को यदि हीरालाल ने स्वेच्छया उपहति कारित की है तो हम उस आरोप (या अपराध की विशिष्टियाँ) निर्मित करेंगे यथा,

प्रथमतः तुमने रामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की एंव धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय अपराध कारित किया।

द्वितीयतः उसी समय, स्थान व दिनांक को तुमने श्यामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की एवं धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय अपराध कारित किया।

उपरोक्त उदाहरण में एक अन्य पद्धति से भी उचित रूप से आरोप लगाया जा सकता है यथा

दिनांक 01.12.1997 को तुमने आरक्षी केन्द्र कोतवाली इन्दौर के अंतर्गत दो कि. मी. परिधि के अंदर नेहरू पार्क में रामलाल व श्यामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की एवं धारा 323 भा.द.वि. की (दो बार) अपराध कारित किया।

दो बार शब्द को अंग्रेजी में (टू काउन्ट्स) शब्द प्रयोग से वर्णित करेंगे। ध्यान रहे कि यदि हीरालाल के विरुद्ध दोनों ही व्यक्तियों को मारने का आरोप सिद्ध हो जाता है तो उसे दो सजायें होंगी। इसके लिए कृपया धारा 71 भा.द.वि. के प्रावधानों का अध्ययंन आवश्यक है। उक्त धारा के अंतर्गत कई अपराधों से मिलकर बने अपराध के लिए एक ही दंड अर्थात सजा का प्रावधान है। जैसे रामलाल ने उतावलेपन अथवा उपेक्षा से वाहन चलाकर हीरालाल को उपहति पहुँचाई है तो धारा 279/337 भा.द. वि. का अपराध निर्मित किया जावेगा। अपराध यदि सिद्ध होता है तो आरोपी को दोषसिद्ध (गिल्टी) पाते हुए (अपराधी) सिद्ध दोष (कनविक्ट) ठहराया जा सकता है लेकिन जो सजा (सेन्टेन्स) दी जाना है वह केवल धारा 337 भा.द.वि. के अंतर्गत ही देना है।

अपराध निर्मित करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि संपत्ति का मूल्य जहां

उल्लेखित करना आवश्यक है वहां ऐसा उल्लेख होना चाहिये यथा चोरी, रिष्टि के प्रकरणों में।

आरोप जो निर्मित हुए हैं उनमें संशोधन भी किया जा सकता है। व परिवर्तन, परिवर्धन अथवा शेष रहे दोषों को भी दूर किया जा सकता है जिस विषय में प्रक्रिया दं.प्र.स. की धारा 216 व 217 में दर्शित है। उसका कठोरता से पालन होना ही चाहिये। कभी कभी ऐसा होता है कि हम आरोप निर्मित करते समय प्रथम सूचना में उल्लेखित व्यक्ति को ही आहत व्यक्ति मानकर आरोप निर्मित कर लेते हैं व डाक्टरी परीक्षण प्रतिवेदन देखते ही नहीं है कि कौन व्यक्ति आहत है। ऐसा इसलिए होता कि आहत व्यक्ति की ओर से किसी अन्य ने रिपोर्ट की हुई होती है अथवा पुलिस ने प्रथमतः प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत नहीं की हो व केवल रोजनामचा सान्हा(डेली डायरी) में प्रथमतः प्रविष्टि की हो तथा बाद में मेडिकल रिपोर्ट के कारण संज्ञान योग्य अपराध होता है तो पुलिस तत्पश्चात प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत करती है व ऐसा आरक्षी केन्द्र का भार साधक अधिकारी स्वयं परिवादी के रूप में अपने नाम की प्रविष्टि करता है। यह तब भी संभव है कि एक आरक्षी केन्द्र पर परिवादी ने अपराध पंजीकृत किया हो तथा उस आरक्षी केंन्द्र को अनुसंधान करने का अधिकार न हो तो वहां से रिपोर्ट संबंधित आरक्षी केन्द्र को भेजी जाती है तथा जो आरक्षक रिपोर्ट ले आता है उसके नाम से परिवादी के रूप में अपराध पंजीकृत हो जाता है व ऐसा खुलासा भी कर दिया जाता है, अतः छोटी–छोटी भूलों से भी बचकर रहना जरूरी है। कौन सी भूल आरोपी को पूर्वाग्रह उत्पन्न करती है, कौन सी नहीं इस विषय में धारा 215 दं.प्र.स. में दर्शाया भी है। नम्र निवेदन है कि हम आपने सबने चार्ज के संबंध में दं.प्र.सं. के प्रावधान से संबंधित पाठ 17 (धारा 211 से 224) के प्रावधानों को एवं चार्ज की परिभाषा धारा 2 बी का न केवल अध्ययन करना चाहिये अपितु व्याख्यात्मक मानक पुस्तक से टिप्पणियाँ भी पढ़ना चाहिये अद्यतन दृष्टातों से सतत रूप से संपर्क में रहना चाहिये। धारा 403 एवं 406 भा.द.वि. के अपराध के संबंध में धारा 212 द.प्र.स. के प्रावधान महत्वपूर्ण है। धारा 212 (2) में यह दर्शित किया है कि जहां आरोपी अपराधिक दुर्विनियोजन अथवा अपराधिक न्यासभंग के आरोप में आरोपित है वहां एक तिथि को दूसरे तिथि के बीच जिस समय या चल वस्तु का दुर्विनियोजन किया है वहां कुछ रकम अथवा वस्तुओं का दर्शाना पर्याप्त है। उक्त धारा 212 (2) का परंतुक यह भी कहता है कि उक्त कालावधि एक साल से अधिक की न हो।

घटना, दिनांक, समय व स्थान आरक्षी केन्द्र से घटना स्थल की दूरी के विषय में आरोप पत्र में समस्त बातें अंतर्भूत होना चाहिये। आरक्षी केन्द्र से दूरी का उल्लेख इसलिए होना चाहिए कि निर्णय लिखते समय दृष्टि से यह बात ओझल न हो कि

घटना समय व घटना की रिपोर्ट करने की बीच कितना अंतराल है। जिससे रिपोर्ट देरी से करने या समय पर होने के संबंध में साक्ष्य का अधिमूल्यन अथवा साक्ष्य का मूल्यांकन या महत्व समझा जा सके।

ध्यान रहे कि एक ही घिसे पिटे ढर्रे पर या लीक से काम करने की आवश्यकता नहीं है। नये–नये विचार कल्पनाएं समय के साथ प्रसूत होती हैं उन्हें व्यवहारिक रूप से उतारना चाहिये। यह कल्पना भी भ्रामक है कि विधि प्रावधानों में ऐसा नहीं लिखा है तो नहीं करना चाहिये लेकिन यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा करने के लिए कोई रोक नहीं है। ऐसा करने से गुणवत्ता यदि बढ़ती है व विधि प्रावधानों के विपरीत नहीं है तो सुधार की प्रक्रिया सतत रूप से जारी रहना चाहिये। जिससे न्यायपालिका नये आयामों को स्पर्श कर सके व संकुचित मनोवृत्ति से मुक्त हो सके। इस संबंध में एक दृष्टांत ***1981 म. प्र. वि. नो. (भाग-2) नोट क्रमांक 187 नगरपालिका विरुद्ध द्वारकाप्रसाद*** का संदर्भ दिया जा सकता है। उसमें ***नरसिंहदास वि. मंगल दुबे 5 पेज 163 (172) (पूर्ण पीठ)*** का उल्लेख करते उक्त दृष्टांत में से निम्न अंश दर्शाये गए हैं:

> Court are not to act upon the principle that every procedure is to be taken as prohibited unless it is expressly provided for by the code; but on the converse principle is that every procedure is to be understood as permissible till it is shown to be prohibited by the law.

यदि कोई सकारात्मक कर्म हम सुविधायुक्त रूप से कार्य निष्पादन हेतु कर रहे हैं तथा ऐसा कार्य विधि द्वारा निषेधित नहीं है तो अवश्य करना चाहिये जिससे हमारा गतिशील प्रबंधन का लक्ष्य प्राप्त हो सके।

REFORM MUST COME FROM WITHIN, NOT WITHOUT. YOU CANNOT LEGISLATE FOR VIRTUE.

JAMES GIBBONS

(सुधार हमेशा अन्तःकरण से आते हैं, बाह्य शक्तियों से निर्मित नहीं होते है, न गुणों के लिए विधि प्रावधानों की रचना होती है।) **जेम्स गिबन्स**

इस पत्रिका में विभिन्न प्रकार के आरोपों के संबंध में प्रारूप दिये जा रहे हैं। उक्त प्रारूप उन आरोपों के संबंध में हैं जिनको दैनंदिन रूप से काम में लेते हैं। कुछ प्रारूप छूट भी गए होंगे। अपने आप में वे पूर्ण भी नहीं हो सकते क्योंकि प्रत्येक पीठासीन अधिकारी का किसी विषय के प्रति भिन्न–भिन्न विचार हो सकता है तथा तर्कपूर्ण व विधिसम्मत भी हो सकता है। उक्त प्रारूप तैयार करने का मुख्य लक्ष्य मात्र यह है कि गतिशील प्रबंधन के अंतर्गत त्वरित कार्य निराकृत हो। अतः चार्ज लगाने के लिए कई माह के समय लगने की आवश्यकता न हो। यदि पत्रिका हमारे पास है तो त्वरित सम्बन्धित चार्ज प्रारूप को देख सकते हैं व संबंधित प्रावधान को देखकर प्रारूप

को अपने अनुकूल बनाकर अविलंब उपयोग में लिया जा सकता है। जो प्रारूप दिये हैं वे केवल मार्गदर्शनात्मक रूप से हैं अपने आप में परिपूर्ण भी नहीं हैं अतः ये प्रारूप आपका लक्ष्य नहीं होना चाहिये अपितु लक्ष्य की ओर बढ़ने का साधन मात्र है। इसी दृष्टिकोण से इनकी प्रस्तुती की गई है।

न्यायालयों में उपलब्ध प्रारूप फार्म छोटे आकार के होते हैं। अतः उनका उपयोग छोटे–छोटे आरोप लगाने के लिए किया जावे। पूर्ण पृष्ठ के प्रारूप बनाकर अग्रिम रूप से रख लेना चाहिए। ऐसा तब करके रखना चाहिये जब न्यायालयीन कार्य किसी कारण से निलंबित हो गया हो लेकिन कार्यालयीन समय तक बैठना अनिवार्य है। समय का उपयोग करके ऐसा कर सकते हैं। आरोप के प्रारूप में रिक्त भाग ज्यादा रखें ताकि किसी प्रकार की घिचपिच या (घिचिर–पिचिर) (स्क्रायबलिंग) न हो व चार्ज अच्छे से दिखें व साफ–सुथरा दिखें। नव–नियुक्त न्यायिक अधिकारियों के लिए कुछ आरोप (अपराध की विशिष्ठियाँ) जैसी भी स्थिति को बनाकर दर्शाया जा रहा है जिससे व्यवहार में किस प्रकार से कार्य करना है यह ज्ञात हो जायेगा। आरोप पत्र आरोपी का अभिवाक् एवं अपराध की विशिष्ठियों के संबंध में प्रारूप भी इसी पत्रिका में दिए जा रहे हैं। यहां यह बताना समीचीन होगा कि आरोपी के अभिवाक् का जो प्रारूप है उसका प्रथम भाग आरोपी को आरोप पढ़कर सुनाए समझाए जाने के विषय में है। आरोप स्वीकारोक्ति की स्थिति में पूर्ण रूप से स्वीकारोक्ति की शब्दावली लिखें। धारा 252 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत यह अपेक्षा है कि यथा संभव अभियुक्त के द्वारा जिस प्रकार से स्वीकृति को अभिव्यक्त किया है उसी अनुरूप उसे स्पष्ट शब्दों में लिखें व देखें कि अपराध के समस्त तत्व स्वीकृति में आये हैं। दूसरा भाग धारा 246 द.प्र.स. के अंतर्गत प्रायवेट परिवाद में चार्जपूर्व साक्ष्य पूर्ण होने पर जब चार्ज लगाया जाता है तब आरोपी को पूछना होता है कि वह पूर्व में परीक्षित साक्षियों को आहुत करना चाहता है या नहीं आदि पूछने पर प्रविष्टि करना है। तृतीय खंड आरोपी की आरोपी परीक्षण के आधार से जो प्रतिरक्षा है उसे लिखने हेतु है। उसका भी उपयोग निष्ठापूर्वक करने की अपेक्षा होती है। अधिकांश न्यायिक अधिकारी इन प्रावधानों का उपयोग नहीं करते। हमारा यह विचार उचित नहीं है कि कोई नई बात का विचार मंथन करके उसे क्रियान्वित न करें व विफरीत इसके जो प्रावधित है उसकी पूर्णता न करे। ऐसा करके हम आलसी बनते हैं व काम को टालने की प्रवृत्ति निर्माण करके ऐसी ही मानसिकता धारण कर लेते हैं।

आशा है उपलब्ध कराई जा रही सामग्री का उपयोग साध्य के रूप में नहीं अपितु साधन के रूप में किया जाएगा। यह इस गतिविधि का अंत नहीं प्रारंभ है।

आपराधिक प्रकरणों में विचारणीय बिंदु

जिस प्रकार सांपत्तिक प्रकरणों में वाद प्रश्न निर्मित होते हैं उसी प्रकार आपराधिक प्रकरणों में भी विचारणीय बिंदु अथवा प्रश्न निर्मित किए जाते रहे हैं। कुछ न्यायिक अधिकारी ऐसे बिंदु निर्णय चरण 5 में उल्लेखित करते हैं। प्रथम चरण में संक्षिप्त में अभियुक्त के विरुद्ध क्या आरोप है। दूसरे चरण में स्वीकृत तथ्य, तीसरे चरण में अभियोजन प्रकरणं चौथे चरण में अभियुक्त का प्रकरण पाँचवे चरण में विचारणीय प्रश्न। अब निर्णय लिखते समय कुछ न्यायिक अधिकारीगणों ने ऐसी पद्धति बदल दी है। वे प्रथमतः विचारणीय बिंदु निर्मित नहीं करते अपितु एक विचारणीय बिंदु निर्मित होने के पश्चात जो दूसरा बिंदु उस कारण से उत्पन्न हुआ है उसे विचार में लेते हैं। हत्या के प्रकरण में सामान्य रूप से दो विचारणीय बिंदु बनते हैं। प्रथमतः क्या अभियुक्त ने मृतक रामलाल की हत्या की? द्वितीयत' दोषसिद्ध एवं दंडादेश। परिवर्तित पद्धति में प्रथमतः यह विचारणीय बिंदु होगा कि क्या रामलाल की मृत्यु हुई? यदि सकारात्मक निर्णय हुआ तो दूसरा बिंदु होगा कि क्या ऐसी मृत्यु अस्वाभाविक हत्या के रूप में थी? तीसरा बिंदु होगा कि क्या ऐसी हत्या आरोपी ने की। इस नई पद्धति से निर्णय लिखने में सुगमता होगी। सेवानिवृत्त माननीय न्यायाधिपति श्रीमान आर.पी. अवस्थी महोदय, संप्रति अध्यक्ष, राज्य प्रशासनिक न्यायाधिकरण, जबलपुर ने इस संबंध में विभिन्न सत्रों में चिंतन प्रस्तुत किया था उसके आधार से पृथक से लेख लिखा जा सकेगा। वर्तमान में विषय से संबंधित परंपरागत पद्धति के संबंध में बताया जा रहा है।

पहली बात यह कि प्रकरण के निराकरण के समय भी हमारे पास मानक विस्तृत टिप्पणी वाली पुस्तक हो। हमारी आदत, मिजाज व स्वभाव ऐसा हो कि पुस्तक देखकर कार्य करें। अपवादात्मक न्यायिक अधिकारीगणों को छोड़ अधिकांश न्यायिक अधिकारी धारा 323 का चार्ज भी ठीक से निर्मित नहीं करते हैं। इस संस्था में विभिन्न सत्रों में इस विषय पर भी कई बार बताया जा चुका है।.जो ठीक से चार्ज निर्मित करते हैं वे ठीक से निष्कर्ष नहीं निकालते हैं। जैसे धारा 323 का आरोप इस प्रकार से बनेगा कि क्या रामलाल को अभियुक्त श्यामलाल ने "स्वेच्छया" उपहति कारित की? अधिकांशतः स्वेच्छया शब्द की उपेक्षा कर देते हैं जो लोग स्वेच्छया शब्द प्रयोग करते हैं वे निर्णय के समय उक्त शब्द पर ध्यान नहीं देते। धारा 323 के जो तत्व पुस्तकों में "टू प्रूव्ह" अथवा "एविडेन्स" (प्रमाण) टीप के अंतर्गत मिलेगें उसमें उपहति स्वेच्छया शब्द का अध्ययन धारा 39, 321–322 भा.द.स. में भी मिलेगा उसका अध्ययन भी आवश्यक है।

दूसरी बात यह कि "टू प्रूव्ह" अथवा "एविडेन्स" अथवा "प्रमाण" में जो तत्व दिए है वे विचारणीय प्रश्न नहीं हो सकते हैं। उसका कारण यह है कि सब तत्व किसी एक बिंदु को सिद्ध करने हेतु मात्र हैं। उसके लिए सांपत्तिक आदेश एवं नियम 145 (जी) की ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा अर्थात कोई भी तथ्यात्मक प्रतिपादन जो स्वयं में तात्विक प्रतिपादन नहीं है अपितु केवल तात्विक तथ्य सिद्ध करने हेतु प्रवृत्त करने हेतु सुसंगत है, को वाद प्रश्न (यहाँ पर विचारणीय प्रश्न) का भाग नहीं बनाया जा सकता। जैसे धारा 323 का आरोप लगाया गया कि तुमने रामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की। विचारणीय प्रश्न बनेगा कि क्या आरोपी ने रामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की? अब हम जब प्रकरण का गुण दोष पर निराकरण करेंगे तब प्रथमतः यह विचार करना होगा कि रामलाल को उपहति कारित हुई? फिर यह विचार करना होगा कि क्या आरोपी ने उपहति कारित की? तृतीयतः यह विचार करना होगा कि क्या ऐसी उपहति आरोपी ने स्वेच्छया कारित की? अतः विचारणीय बिंदु अथवा प्रश्न मुख्य रूप से यह है कि क्या आरोपी ने परिवादी की स्वेच्छया उपहति कारित की?

जब हम निर्णय के निष्कर्ष निकालने के स्थिति में (स्टेज पर) आऐंगे तब हमें इन सब बातों को विचार में लेकर निर्णय देना है। यदि ये सब तत्व सिद्ध हो जाऐंगे तो आरोपी के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

विचारणीय बिंदुओं का विवरण अपराध के तत्वों जैसा नहीं होना है अर्थात विचारणीय बिंदु ऐसे नहीं बनेंगे? यथा :

1. क्या सायकल चल संपत्ति है?
2. क्या आरोपी ने सायकल को बेइमानी पूर्वक आशय से हटाया?
3. क्या सायकल चोरी के समय अभियुक्त के आधिपत्य में थी?
4. क्या परिवादी के सहमति के सिवाय सायकल को हटाया?
5. क्या सायकल को चोरी करने के आशय से हटाया?

ये सब तत्व जो स्वयं में तथ्यात्मक प्रतिपादन न होकर से तथ्य मुख्य मुद्दे को सिद्ध करने हेतु सुसंगत हैं। अर्थात चोरी के प्रकरण में केवल दो विचारणीय प्रश्न बनेंगे।

1. क्या रामलाल के आधिपत्य से आरोपी ने सायकल की चोरी की?
2. दोषसिद्धि एवं दंडादेश।

मारपीट के प्रकरण में भी इस प्रकार आरोप एवं विचारणीय प्रश्न नहीं बनेंगे कि

तुमने परिवादी को दो थप्पड़, दो लठ्ठ स्वेच्छया मारे व उसे धक्का दिया एवं वह गिर पड़ा व इस प्रकार धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध कारित किया। यूँ ही विचारणीय बिंदु भी नहीं बनाना है। यदि रात के समय घर में घुसकर प्रच्छन्न गृहभेदन या गुह अतिचार व चोरी करने का आरोप है तो विचारणीय बिंदु लगभग 10 से 15 बनेंगे। ऐसा करके भी कोई ठोस बात उपलब्ध होगी ऐसी बात नहीं है। ऐसा करने के पश्चात भी हम प्रत्येक विचारणीय प्रश्न को पृथक–पृथक तो निर्णित नही करेंगे अपितु कई विचारणीय प्रश्नों का समूह बनाकर यही तो लिखेंगे कि उपरोक्त विचारणीय बिंदु 1, 2, 3, 4, 5, को एक साथ निराकृत किया जा रहा है क्योंकि वे एक ही विषय वस्तु से संबंधित हैं तथा दोहराव टालने हेतु भी ऐसा ही किया जा रहा है। ये तो ऐसा ही हुआ कि हमने अपना प्रपंच फैला दिया व फिर उसे स्वयं समेट रहे हैं व अनावश्यक निरर्थक परिश्रम कर रहे हैं।

यहाँ एक बात और भी बता देना सुसंगत होगा कि कोई भी विचारणीय प्रश्न निर्धारित करते समय ऐसा न लिखें कि यह प्रश्न सकारात्मक निर्णित होता है या नकारात्मक निर्णित होता है। ऐसा करने के कारण निर्णय पढ़ने वाले को बात समझ में नहीं आती क्योंकि न्यायालय क्या कहना चाहता है जो विचारणीय प्रश्न है उसी का दोहराव पर्याप्त है। यथा उपरोक्त विवरण के आधार से यह न्यायालय निर्णय देता है कि परिवादी रामलाल को आरोपी श्यामलाल ने स्वेच्छया उपहति कारित की अतः यह न्यायालय अभियुक्त को धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत दोषी (दोष सिद्ध अथवा गिल्टी) पाते हुए दंडित (सिद्ध दोष अथवा कनविक्ट) करता है।

यथा संभव (मैं) शब्द को टालने का प्रयत्न हो व उसके स्थान पर "यह न्यायालय" शब्द प्रयोग हो तो ज्यादा बेहतर, उचित होगा। (मैं) की भावना भी कम होगी व यह अनुभव होगा कि (मैं) मैं नही अपितु न्यायालय का दंडाधिकारी होकर न्यायालय सर्वोपरि है (मैं) नहीं।

हम आप भी कृपया इस दृष्टिकोण से देखें तो सहज संभव है कि कार्य सुगमता से, सुलभ गति से, शीघ्र गति से, न्यूनतम भूलों सहित बिना उलझन या किंकर्तव्यविमूढता के पूर्ण होगा।

BE READY TO FORGO SHORT TERM BENEFITS IN ORDER TO ACHIEVE YOUR LONG TERM GOALS.

आरोप

(कृपया धारा 211-12-13 एवं धारा 240-246 (1) देखें)

मै.....अति. सत्र न्यायाधीश/मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी/न्यायिक दंडाधिकारी प्रथम श्रेणी/द्वितीय श्रेणी तुम..... पुत्र.....पर नीचे अनुसार आरोप लगाता हूँ कि

तुमने दिन.....माह.....सन्.....को या उसके लगभग स्थान.....जो आरक्षी केन्द्र.....से. .....किलोमीटर परिधि में है, में :

और इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो धारा.....के अंतर्गत संज्ञान के अंतर्गत है तथा मैं निर्देशित करता हूँ कि तुम पर आरोपित दोषारोप पर विचारण किया जावे।

दिनांक.....

हस्ताक्षर

(नाम)

पदनाम की सील

आरोप का उत्तर

(दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 240–246–247)

आरोप पढ़कर बताने पर एवं समझाने पर आरोपी..... पिता.....का कहना है कि :

अभियुक्त की अपेक्षा है कि निम्नलिखित कोई भी अभियोजन साक्षी जिनका परीक्षण हो चुका है/होना शेष है को पुनः प्रतिपरीक्षण हेतु आहुत किया जावे/आहुत न किया जावे।

(कृपया धारा 246(4-5-6) दं.प्र.सं का अवलोकन करें)

प्रतिरक्षा देने हेतु कहने पर आरोपी का कहना है कि :

(कृपया धारा 247 सहपठित धारा 313 दं.प्र.सं. के अनुसार आरोपी की प्रतिपक्षा आरोपी परीक्षण पश्चात यहां लिखना होती है।)

अपराध की विशिष्टियाँ

(कृपया धारा 215 दं.प्र.सं. देखें)

न्यायालय मुख्य न्यायिक दंडाधिकारी, प्रथम/द्वितीय श्रेणी, ...करण क्रमांक...../97

राज्य शासन द्वारा.....विरुद्ध

नाम अभियुक्त.....

तुमने दिनांक.....को स्थान.....में.....समय

ऐसा करके आपने भा.द.सं. की धारा.....के..... अंतर्गत अपराध कारित किया। क्या तुम दोषी होने का अभिवाक् करते हो अथवा प्रकरण की सुनवाई चाहते हो।

दिनांक.....

हस्ताक्षर

(नाम)
मुद्रा
न्यायिक दंडाधिकारी

अपराध की विशिष्टियाँ सुनाए समझाये जाने पर अभियुक्त ने कहा कि :

हस्ताक्षर आरोपी

हस्ताक्षर

(नाम)
मुद्रा
न्यायिक दंडाधिकारी
दिनांक.....

विभिन्न आरोपों के प्रारूप

धारा 34 भा.द.वि.

नोट : कृपया धारा 302/34 के स्थान पर प्रारूप देखें एवं विशेष विवरण जो इन प्रारूपों पश्चात् दिया है में देखें।

धारा 109 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1994 को तुम आरोपी श्यामलाल द्वारा महिला रामबाई के साथ बलात्संग किए जाने में जो कि आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध है, दुष्प्रेरण किया और बलात्संग का अपराध उक्त दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया जो कि धारा 109 के अंतर्गत दंडनीय है। एवं इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

(दुष्प्रेरक घटनास्थल पर उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है।)

धारा 114 भा.द.वि.

(उक्त अपराध के समय आरोपी स्वयं घटनास्थल पर उपस्थित रहता है) दिनांक 01–01–98 को तुमने आरोपी श्यामलाल द्वारा महिला रतनी पत्नी रतन के साथ बलात्संग जो कि आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध है और ऐसा अपराध कारित करने का दुष्प्रेरण उकसाकर अथवा षड़यंत्र में सहायता के लिए नियुक्त रहकर या अपराध कारित करने में साशय अनुदान देकर किया और ऐसे समय तुम स्वयं अपराध के कारित होते समय उपस्थित रहे तथा यह उपधारित होगा कि तुमने ऐसा अपराध कारित किया और ऐसा अपराध किया जो धारा 114 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 115 भा.द.वि.

(आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध में दुष्प्रेरण करना)

दिनांक 01–01–98 के करीब तुम ने आरोपी मथुरा एवं रामखिलावन द्वारा महिला रतनी पत्नी रतन से बलात्संग किया और ऐसा अपराध जो आजीवन कारावास से दंडनीय है को कारित करने के लिए दुष्प्रेरित किया जो उक्त अपराध दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप कारित नहीं किया जा सकता था और उसके द्वारा तुमने ऐसा अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 115 के अधीन दंडनीय है और इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 120/बी भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने सह अभियुक्त .....के साथ मिलकर रामलाल का व्यवहरण अथवा अपहरण कर उसकी हत्या करने का षड़यंत्र किया और ऐसा अपराध जो कि भा.दं.वि. की धारा 363/366 एवं 302 भा.द.वि. के अंतर्गत क्रमशः 7 या 10 वर्ष तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय है के कारित किये जाने में सहमति की और उस सहमति के प्रवर्तन में तुम आरोपी ने निम्नलिखित अपराधिक कृत्य किया :

आरोपी क्रमांक – 1

आरोपी क्रमांक – 2

आदि आदि। और इस प्रकार धारा 120/बी भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है और जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 147 भा.द.वि.

दिनांक 05–02–1998 को तुम एक विधि विरुद्ध समूह के सदस्य रहकर उस समूह के सामान्य् उद्देश्य यथा अ की हत्या करना था को अग्रसर करने में बल या हिंसा का प्रयोग कर बलवा करने का अपराध कारित किया जो भा.द.वि. कर धारा 147 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

धारा 148 भा.द.वि.

दिनांक 10–02–1998 को तुम एक विधि विरूद्ध समूह के सदस्य रहकर उस समूह के सामान्य उद्देश्य "अ" की हत्या करना था के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में बल या हिंसा का प्रयोग कर बलवा करने का अपराध कारित किया और उस समय तुम घातक अस्त्र यथा बंदूक/फरसा/बल्लम या ऐसी वस्तु जिससे आक्रमक आयुध के रूप में प्रयोग किये जाने पर मृत्यु कारित होना संभाव्य था, से सज्जित रहे और इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 148 के अंतर्गत दंडनीय है और इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

149 भा.द.वि.

नोट :– कृपया धारा 302/34 के स्थान पर प्रारूप देखे एवं विशेष विवरण जो इन प्रारूपों पश्चात् दिया है में देखें।

186 भा.द.वि.

दिनांक 01-01-98 को तुमने रामलाल जो एक लोक सेवक था को उसके लोक सेवक के रूप में कार्य निर्वाहन में अवरोध/प्रतिरोध/बाधा/रूकावट/अड़ंगा डाला एवं ऐसा अपराध कारित किया जो धारा 186 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

नोट– धारा 186 भा.द.वि. का अपराध संज्ञेय है। कृपया आगे इस संबंध में नोटिफिकेशन (परिपत्र) प्रकाशित किया है।

धारा 201 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुम यह जानते थे कि रामलाल की हत्या की गई है/ अथवा यह विश्वास करने हेतु पर्याप्त कारण था कि रामलाल की हत्या की गई है जो भा.द.वि. की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय है। (अन्य अपराध हो तो वैसा लिखें) उक्त अपराध के किए जाने के किसी साक्ष्य का विलोप (प्रकार लिखें कि किस प्रकार विलोप किया) किया/यह जानते हुए या विश्वास करते हुए उक्त अपराध के सम्बन्ध में असत्य सूचना दी जिससे आरोपी वैध दंड से प्रतिच्छादित किया जा सके।

धारा 279 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने सार्वजनिक मार्ग महात्मा गांधी मार्ग पर वाहन यथा (वर्णन करें यदि वाहन हो तो नाम व नंबर) को उपेक्षा अथवा उतावलेपन या असावधानी से इस प्रकार चलाया कि सार्वजनिक जीवन संकटापन्न हो सके अथवा किसी को उपहति अथवा हानि या क्षति पहुँच सके एवं उसके फलस्वरूप वह अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 279 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 294 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने सार्वजनिक स्थान नेहरू पार्क में रामलाल का अश्लील शब्द (उल्लेख करें) उच्चारित कर उसे सुनाए तथा उससे रामलाल एवं अन्य लोगों को क्षोभ उत्पन्न हुआ / अथवा बुरा लगा।

धारा 302 भा.द.वि.

तुमने दिनांक 04–04–1997 को "अ" आत्मज "ब" की मृत्यु साशय अथवा जानते हुए कारित कर उसकी हत्या की, फलस्वरूप तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय है और जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

और मैं निर्देशित करता हूँ कि तुम पर आरोपित उपरोक्त दोषारोप पर विचारण किया जाये।

अथवा विकल्प में

धारा 302/34 भा.द.वि.

उसी समय, स्थान व दिनांक को तुम अभियुक्त "अ" ने अभियुक्त ब/स/द के साथ समान आशय यथा रामलाल की मृत्यु कारित करने के लिए निर्मित किया और उक्त कार्य को अग्रसर कारित करने में किसी या कुछ या सभी सदस्यों ने रामलाल की हत्या की जिसे तुम उक्त समूह के समान आशय को अग्रसर करने में कारित किया जावेगा ऐसा संभाव्य होना जानते थे परिणामस्वरूप तुमने उक्त अपराध कारित किया जो भा. द.वि. की धारा 302 सहपाठित धारा 34 के अंतर्गत दंडनीय है।

"अथवा विकल्प में"

धारा 302/149 भा.द.वि.

उसी समय, स्थान और दिनांक को तुम अभियुक्त अ/ब/स/द/फ विधि विरूद्ध समूह के सदस्य थे जिस समूह का सामान्य उद्देश्य रामलाल की हत्या करना था को अग्रसर करने में विधि विरूद्ध समूह के किसी या कुछ या सभी सदस्यों ने रामलाल की हत्या की जिसे तुम उक्त समूह के सामान्य उद्देश्य को अग्रसर करने में कारित किया जावेगा ऐसा संभाव्य होना जानते थे। परिणामस्वरूप तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 302 सहपठित धारा 149 के अंतर्गत दंडनीय है।

और मैं निर्देशित करता हूँ कि तुम पर आरोपित उपरोक्त दोषारोप पर विचारण किया जावे।

धारा 304 (भाग 1) एवं (भाग 2)

दिनांक 01–02–1998 को रामलाल की मृत्यु कारित की, इस आशय से कि ऐसी शारीरिक क्षति कारित करके जिससे मृत्यु होना संभाव्य था/इस ज्ञान के साथ कि तुम्हारा (उल्लेखित करो कार्य जो किया) मृत्यु कारित करने हेतु संभाव्य था और तुमने ऐसा वध कारित करके ऐसा अपराध किया जो हत्या की कोटि में नहीं आता है और इस प्रकार तुमने धारा 304 (भाग 1)/304 (भाग 2) का अपराध कारित किया।

धारा 304–ए भा.द.वि.

दिनांक 11–02–1997 को तुमने ऐसा कृत्य यथा (कृत्य का वर्णन करें) (यदि वाहन हो तो वाहन का नाम, नंबर आदि बतावें) उपेक्षा अथवा असावधानी से कर के मगन की मृत्यु कारित की जो कि हत्या के कोटि में नहीं आती है। एवं उसके फलस्वरूप वह अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 304–ए के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 304–बी भा.द.वि.

दिनांक 11–02–1997 को तुमने महिला कला की मृत्यु उसके विवाह से सात वर्ष के अंदर ऐसे अस्वाभाविक कृत्य यथा जलाकर शारीरिक उपहति अथवा (जो भी स्थिति हो वर्णन करें) से कारित की तथा मृत्यु के पूर्व उक्त महिला को विवश या अधीन कर (सब्जेक्टैड) उसके साथ क्रूरता या परेशानी उसके पति (नाम) पति के नातेदार (नाम एवं सम्बन्ध) द्वारा कारित की अथवा दान दहेज के लिए विवश किया एवं इसके फलस्वरूप वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 304–बी दहेज हत्या के रूप में दंडनीय है तथा जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 306 भा.द.वि.

दिनांक 01–02–1998 को महिला "अ" ने स्वयं को जलाकर (या फाँसी लगाकर प्रकरण का जैसा भी प्रकार हो) आत्म हत्या कारित की और ऐसा करने के लिए प्रयोजन यह था कि तुमने उसे और उसके मायकेवालों को सतत् रूप से दहेज हेतु प्रताड़ित किया और ऐसा करके तुमने "अ" को आत्महत्या करने के लिये दुष्प्रेरित किया और फलस्वरूप तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 306 के अंतर्गत दंडनीय है और इस न्यायालय द्वारा संज्ञान योग्य है।

धारा 307 भा.द.वि.

तुमने दिनांक 02–12–1997 को स्थान में एक कृत्य यथा अ को काटने के आयुध चाकू से प्राणान्तक उपहति कारित करना इस आशय से या ज्ञान से तथा ऐसी परिस्थितियों में किया कि आपके द्वारा किये गये उक्त कृत्य के कारण अ की मृत्यु हो जाती तो तुम हत्या के दोषी होते और तुमने उपरोक्त कृत्य द्वारा अ को गंभीर उपहति कारित की और तुमने वह अपराध किया जो धारा 307 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 337 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने ऐसा कृत्य यथा (वर्णन करे) वाहन (नाम नंबर आदि यदि हो तो) उपेक्षा या उतावलेपन या असावधानी से कारति किया जिससे मानव जीवन अथवा दूसरों की सुरक्षा संकटापन्न हो एवं अमुक अमुक को उपहति कारित की एवं उसके फलस्वरूप वह अपराध कारित किया जो भा.द.वि. धारा 337 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 338 भा.द.वि.

(उपरोक्तानुसार, अंतर केवल उपहति के स्थान पर गंभीर उपहंति स्थानापन्न करने की सीमा तक होगा।)

धारा 341 भा.द.वि.

तुमने रामलाल को स्वेच्छया सदोष अवरोध कारित किया एवं इस प्रकार तुमने ऐसा कृत्य किया जो भा.द.वि. की धारा 341 के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

नोट : धारा 342 भा.द.वि. के लिए सदोष परिरोध शब्द प्रयोग करें।

धारा 352 भा.द.वि.

तुमने कोई अंग विशेष (मुक्का हिलाना) या तैयारी (लाठी उठाने हेतु अग्रसर होना) इस आशय से या संभाव्य जानते कारित किया/कि रामलाल को यह अनुभूति हुई कि उस पर हमला/अपराधिक बल प्रयोग होने वाला ही है तथा इस प्रकार तुमने ऐसा कृत्य कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 352 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

धारा 353 भा.द.वि. (धारा 332 एवं धारा 333)

तुमने रामलाल पर जो कि एक लोक सेवक आदेशिका वाहक था तथा जब वह लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्य निष्पादन में विधिवत जप्ती कार्यवाही तुम्हारे निवास स्थान पर कर रहा था/करना चाहता था तब तुमने उसे ऐसा कार्य करने में अवरोध उत्पन्न किया/धक्का दिया/वारंट फाड़ डाला/आदि आदि तथा ऐसा करके आपराधिक बल प्रयोग/हमला किया व ऐसा कार्य किया जो भा.द.वि. की धारा 353 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध है।

नोट : धारा 332 भा.द.वि. के लिए एवं धारा 333 के अपराध के आरोप हेतु आरोप में क्रमशः उपहति/गंभीर उपहति का उल्लेख होगा।

धारा 354 भा.द.वि.

दिनांक 10–3–1998 को या उसके लगभग कलीबाई जो एक स्त्री है कि स्त्री सुलभ सलज्जता को भंग करने के आशय से (अथवा यह संभाव्य जानते हुए कि उसकी लज्जा भंग हो सकती है उक्त महिला पर हमला कारित किया (अपराधिक बल प्रयोग किया) फलस्वरूप वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 354 के अंतर्गत दंडनीय है तथा जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 363 भा.द.वि.

दिनांक 11–3–1997 को रामलाल जो 16 वर्ष से कम आयु का / रामकली जो 18 वर्ष से कम आयु की थी भारत से/या उसके संरक्षक हीरालाल की विधिपूर्ण संरक्षकता में से व्यपहरण किया।

धारा 364 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने रामलाल का व्यपहरण अथवा अपहरण इस आशय से किया कि उसकी हत्या की जावे अथवा उसको ऐसा व्ययनीत किया जावे कि उसकी हत्या होने के खतरे में पड़ जावे और इस प्रकार तुमने वह अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 364 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 366 भा.द.वि.

दिनांक 01–3–1998 को तुमने एक महिला यथा अ का व्यपहरण/अपहरण आयुक्त संभोग करने के लिए अथवा जबरदस्ती विवाह करने के लिए विवश या विलुब्ध करने हेतु उसकी इच्छा के विरूद्ध अथवा उसके वैध संरक्षक की अनुमति एवं सहमति के बिना किया और उसके द्वारा तुमने ऐसा अपराध कारित किया जो धारा 366 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 368 भा.द.वि.

दिनांक 01–3–1998 को तुमने यह जानते हुए कि उक्त महिला यथा अ एक व्यपहरित अथवा अपहरित महिला है, तुमने उसे सदोष छिपाया अथवा उसे परिरोधित करके रखा एवं इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 368 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 376 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–98 या ग्राम मुसाखेडी में महिला अ के साथ बलात्संग किया और फलस्वरूप तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा के अंतर्गत दंडनीय है और इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 379, 380 व 381 भा.द.वि.

तुमने रामलाल के आधिपत्य से सायकल/स्कूटर/घड़ी आदि (मूल्य) हटाकर चोरी की एवं ऐसा कृत्य किया जो धारा 379 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

नोट : यदि निवास स्थान के अंदर से अथवा संपत्ति के अभिरक्षा हेतु उपयोग में आने वाले स्थान से चोरी होती है तो स्थान का उल्लेख हो तथा ऐसा अपराध धारा 380 भा.द.वि. का अपराध होगा। यदि सेवक के विरूद्ध अपराध है तो धारा 381 भा. द.वि. का अपराध होगा।

धारा 394/397 भा.द.वि.

तुमने दिनांक 01–3–98 को सिंगपुर आरक्षी क्षेत्र हिन्डोरिया में सह–आरोपी जीवनसींग पुत्र कन्छेदी तथा जीवनसींग पिता दुर्जनसिंग के साथ मनकोरा बाई पत्नी पैकोड़ी के मकान में लूट करने के लिए सम्मिलित हुए तथा उक्त दोनोंजन जब जग्गोबाई के चांदी का डोरा, चांदी का हार तथा मनकोराबाई के संगोरिया और रूपये 530/–की लूट कर रहे थे तब उक्त संपत्ति की लूट करने में संयुक्त तौर पर सम्प्रक्त रहकर मनकोराबाई को गंभीर उपहति कारित की और ऐसा करके तुमने धारा 394 भा.दं.वि. के अधीन दंडनीय अपराध किया एवं ऐसी लूट करते समय जीवन पिता कन्छेदी फरसा लिए था और जीवन पिता दुर्जन कुल्हाड़ी लिए हुए था जो कि घातक आयुध थे तथा कुल्हाड़ी तथा फरसे का उपयोग मनकोराबाई को (गंभीर) उपहति पहुँचाने में कारित किया और तुमने ऐसा उपराध किया जो धारा 394 सहपठित धारा 397 भा.द.वि. के अधीन दंडनीय है और न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 395/397 भा.द.वि.

दिनांक 04–3–98 कारे सुबह 7.00 बजे ग्राम बांदकपुर में रामलाल की डकैती रूपये 350/– की करके उसे उपहति कारित की और धारा 395 भा.द.वि. का अपराध किया।

एवं ऐसी डकैती करते समय तुम अमुक आयुध लिए हुए थे (यदि प्रत्येक आरोपी आयुध लिए हुए थे तो उसका वर्णन) जो कि घातक आयुध के रूप में प्रयोग किया जा सकता था और उसका प्रयोग करके तुमने रामलाल को उपहति कारित की (गंभीर या साधारण जैसी भी स्थिति हो) और तुमने ऐसा अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 395 सहपठित धारा 397 के अंतर्गत दंडनीय अपराध किया जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

धारा 396 भा.द.वि.

दिनांक 04–11–97 को पाँच या पाँच से अधिक व्यक्तियों के संयुक्त होकर डकैती की तथा उस डकैती को कर रहे व्यक्तियों में से किसी कुछ या सभी सदस्यों ने (नाम का उल्लेख करें) रामलाल की मृत्यु साशय या जानते हुए कारित कर हत्या की।

धारा 399/402 भा.द.वि.

दिनांक 04–02–98 की सुबह 4.00 बजे लगभग सुनार नदी रेल्वे पुल के नीचे थाना क्षेत्र पथरिया के अंतर्गत तुम डकैती कारित करने के लिए आयुधों से सज्जित होकर बैठे थे और सभी आरोपी (नाम) आपस में विचार कर रहे थे कि शिवराम कुर्मी के यहां पर डकैती डालनी है और उसके द्वारा तुमने ऐसा अपराध किया जो भा.द. वि. की धारा 399 के अधीन दंडनीय है।

उसी समय स्थान व दिनांक को तुम डकैती कारित करने के प्रयोजन से एकत्र हुए पांच आरापियों में से एक रहे हो और उसके द्वारा तुमने ऐसा अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 402 के अधीन दंडनीय है।

धारा 403 भा.द.वि.

तुमने दिनांक 01–01–98 को रामलाल की सोने की चेन जिसका मूल्य 10,000/– रूपये है का बेईमानीपूर्वक दुर्विनियोग किया अथवा अपने उपयोगार्थ परिवर्तित कर दिया व इस प्रकार वह अपराध कारित किया जो धारा 403 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 403 भा.द.वि.

(यदि एक ही वर्ष में एक से अधिक चल संपत्तियों का दुर्विनियोजन हुआ हो तो)

तुमने दिनांक 01–01–1997 से 31–12–97 की कालावधि के बीच संपत्तियां यथा (वर्णन करें) का दुर्विनियोजन अथवा अपने उपयोगार्थ परिवर्तित व इस प्रकार वह अपराध कारित किया जो धारा 403 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 404 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1997 को तुमने उस संपित्त का (वर्णन करें) का दुर्विनियोजन किया अथवा अपने हितार्थ संपरिवर्तित किया जो रामलाल के मृत्यु के समय उसके आधिपत्य में थी तथा उसके मृत्यु पश्चात् उक्त संपत्ति का उसके किसी वैध उत्तराधिकारी के पास होना साशयित थी जो नहीं रही एवं इस प्रकार तुमने वह अपराध कारित किया धारा 404 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 406 भा.द.वि.

यह कि तुम्हे परिवादी रामलाल ने चल संपत्ति (वर्णन करें) न्यस्त की थी, का अपराधिक न्यास भंग (विवरण दें) किया एवं धारा 406 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

धारा 406 भा.द.वि.

(यदि एक ही वर्ष में एक से अधिक संपत्ति (चल) का न्यासभंग हुआ हो तो) :–

दिनांक 01–01–1997 से 31–12–97 की कालावधि के बीच चल संपत्ति (वर्णन करें) जो रामलाल ने तुम्हें न्यस्त की थी का आपराधिक न्यास भंग (विवरण दें) किया एवं धारा 406 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

धारा 407 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1997 को तुमने परिवादी रामलाल की संपत्ति जिसे तुम्हें वाहक के रूप में या घाटवाल या भांडागारिक के रूप में न्यस्त की थी के सम्बन्ध में अपराधिक न्यासभंग (किस प्रकार से किया) किया एवं ऐसा अपराध कारित किया जो धारा 407 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 408/409 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–97 को तुम रामलाल के लिपिक या सेवक होते हुए या सेवक के रूप में नियोजित होते हुए और इस रूप से संपत्ति यथा (वर्णन करें) पर कोई प्रभुत्व अथवा नियंत्रण अथवा अधिकार न्यास के रूप में होते हुए उक्त संपत्ति के विषय में ऐसा कृत्य (वर्णन करें) करके अपराधिक न्यासभंग किया।

नोट : 409 के लिए प्रारम्भिक शब्दावलियों में लोक सेवक बैंकर, व्यापारी फॅक्टर, दलाल, अटार्नी या अभिकर्ता के रूप में शब्द प्रयोग कर धारा 408 की शब्दावली दोहराना है।

धारा 417 भा.द.वि.

दिनांक 01–02–98 को तुमने रामलाल के साथ यथा (कृत्य का वर्णन करें) करके छल कारित किया।

धारा 418 भा.द.वि.

दिनांक 10–02–1998 को इस ज्ञान से रामलाल के साथ यथा (कृत्य का वर्णन करें) छल कारित किया कि संभव था कि रामलाल को सदोष हानि पहुँचेगी जिसका हित उक्त संव्यवहार में जिससे उक्त छल सम्बन्धित है, संरक्षित रखने हेतु तुम विधि/संविदा/द्वारा आबद्ध थे।

धारा 419 भा.द.वि.

दिनांक 04–02–1998 को तुमने यह अपदेश करके कि तुम वह व्यक्ति हो यथा (जिसके नाम का उपयोग किया) या यह जानते हुए कि तुमने रामलाल को हीरालाल के लिए प्रतिस्थापित किया अथवा यह व्यपदिष्ट किया कि तुम अथवा (जिसके नाम का उपयोग किया) (वे दोनों) तुम्हारें से भिन्न है, छल कारित किया।

धारा 420 भा.द.वि.

दिनांक 03–02–1998 को तुमने रामलाल की संपत्ति (वर्णन करें) को तुम्हें परिदत्त करने के लिए बेईमानीपूर्वक उत्प्रेरित कर प्रवंचित किया अथवा मूल्यवान प्रतिभूति (आदि जैसा धारा 420 में वर्णित है) को पूर्णतः अथवा भागतः रचना करने या परिवर्तित या नष्ट कर देने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित कर प्रवंचित किया तथा छल कारित किया।

धारा 426 भा.द.वि.

दिनांक 10–10–97 को तुमने सर्वसामान्य जन/रतन की संपत्ति (वर्णन करें कि किस प्रकार का कृत्य है) की रिष्टि कारित की एवं धारा 426 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

धारा 427 भा.द.वि.

दिनांक 10–10–97 को तुमने सर्वसामान्य जन/रतन की संपत्ति जिसका मूल्य रूप्ये 50/– (या उससे अधिक) था (वर्णन करें कि किसी प्रकार का कृत्य है) की रिष्टि कारित की एवं धारा 427 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

धारा 428 भा.द.वि.

दिनांक 10–10–97 को तुमने दस रूपये (या उससे अधिक) मूल्य के जीव जन्तु (यथा नाम) को (कृत्य जो किया हो वर्णन करें) और एतद् द्वारा रिष्टि कारित की।

धारा 429 भा.द.वि.

दिनांक 10–10–97 को तुमने जीव यथा हाथी/ ऊंट/ घोड़े/ खच्चर/ भैंस/ सांड/ गाय या बैल (कृत्य जो किया का वर्णन करें) और रिष्टि कारिता की।

नोट : यदि उपरोक्त विशिष्ठ जीवों के अतिरिक्त अन्य कोई जीव जन्तु जिसका मूल्य 50 रूपये या उससे अधिक हो तो उस विषय का खुलासा कर धारा 429 भा. द.वि. का चार्ज निर्मित करें।

धारा 435 भा.द.वि.

दिनांक 04–01–1998 को तुमने रामलाल की संपत्ति यथा (वर्णन) को एक सौ रूपये (या उससे अधिक) कृषि उपज जो दस रूपये (या उससे अधिक) नुकसान कारित करने के आशय से या यह संभाव्य जानते हुए कि एतद् द्वारा नुकसान कारित होगा अग्नि/विस्फोटक पदार्थ द्वारा रिष्टि की।

धारा 436 भा.द.वि.

दिनांक 01–02–1998 को तुमने प्रतिवादी "अ" के भवन में जो कि आवास/व्यवसायिक कार्य/संपत्ति के संग्रह के काम आता है को नाश करने के आशय से या यह सांभव्य जानते हुए कि एतद् द्वारा तुम उसका नाश करोगे अग्नि से या विस्फोटक पदार्थ से रिष्टि कारित की तथा इसके फलस्वरूप तुमने वह अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 436 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 447 भा.द.वि.

संदर्भ : धारा 441 भा.द.वि.

यह कि दिनांक 01–01–1998 को रामलाल के आधिपत्य की संपत्ति पर यथा (वर्णन करें) इस आशय से प्रवेश किया कि (वर्णन करें) जिससे रामलाल को अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्ध किया जा सके।

अथवा

यह कि दिनांक 01–01–1998 को रामलाल के आधिपत्य की संपत्ति पर यथा (वर्णन करें) विधिपूर्वक प्रवेश करके वहां विधि विरूद्ध रूप से इस आशय से बने रहे कि रामलाल को अभित्रस्त, अपमानित या क्षुब्ध कर सके। कोई अपराध कर सकें।

धारा 448 भा.द.वि.

संदर्भ : धारा 442 भा.द.वि.

यह कि दिनांक 01–01–1998 को रामलाल के निवास के लिए उपयोग में आने वाले मकान आदि (जैसा धारा 442 में दर्शाया है) प्रवेश कर उसमें बने रहे तथा अपराधिक अतिचार का कृत्य यथा (धारा 441 में उल्लेखित तत्वों में से आवश्यक तत्व का खुलासा करें) कारित कर गृह अतिचार किया।

धारा 449 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने अवैधानिक रूप से रामलाल के मकान में प्रवेश करके गृह अतिचार किया ताकि मृत्युदंड से दंडनीय अपराध (रामलाल की हत्यां) कारित की जा सके और इस प्रकार धारा 449 के अंतर्गत कारित किया।

धारा 450 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने अवैधानिक रूप से रामलाल के मकान में प्रवेश करके गृह अतिचार किया ताकि आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध (रामबाई के साथ बलात्संग) कारित किया ज़ा सके और इस प्रकार धारा 450 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध कारित किया।

धारा 451 भा.द.वि.

यह कि दिनांक 01–01–1998 को रामलाल के मकान में यथा (धारा 442 में उल्लेखित स्थान का वर्णन) में (अपराध करने के प्रकार का खुलासा करें) जो कि कारावास से दंडनीय अपराध की श्रेणी में आता है, गृह–अतिचार किया।

धारा 452 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने रामलाल के मकान में यथा (स्थान का वर्णन) उपहति/हमला/सदोष अवरोध कारित करने हेतु (वर्णन) अथवा उपहति/हमला/सदोष अवरोध के भय (वर्णन) में डालने की तैयारी करके गृह अतिचार किया।

धारा 454 भा.द.वि.

दिनांक 01--01--1998 को तुमने रामलाल के मकान में यथा (स्थान का वर्णन) प्रच्छन्न गृह अतिचार/गृह भेदन यथा (वर्णन करें) किया।

धारा 455/456 भा.दं.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने रामलाल के मकान में यथा (स्थान का वर्णन करें) उपहति/हमला/सदोष अवरोध कारित करने हेतु (वर्णन) अथवा उपहति/हमला/सदोष अवरोध के भय (वर्णन) में डालने की तैयारी करके प्रच्छन्न गृह अतिचार/गृह भेदन किया। (रात्रिकालीन हो तो उक्त शब्द प्रयोग सहित धारा 456 का आरोप निर्मित होगा।) (रात्रि का अर्थ सूर्यास्त से सूर्योदय के पूर्व) स्मरण रहे कि दिनांक का खुलासा हमेशा 01–01–1998 एवं 02–01–1998 के मध्य रात्रि में करके चार्ज लगाना प्रारंभ करें, (यदि निश्चित समय ज्ञात नहीं हो तो) मध्य रात्रि पूर्ण 12.00 होकर दिन परिवर्तित होता है।

धारा 457 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने मध्य रात्रि में रामलाल के मकान में यथा (वर्णन करें) कारावास से दंडनीय अपराध कारित करने के लिए रात्रि प्रच्छन्न गृह अतिचार/रात्रि गृह भेदन किया।

धारा 458 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–98 एवं 02–01–98 की मध्य रात्रि में रामलाल के मकान यथा (वर्णन) सूर्यास्त के पक्षांत एवं सूर्योदय के पूर्व परिवादी रामलाल को उपहति/हमला सदोष अवरोध कारित करने हेतु (वर्णन) अथवा उपहति/हमला सदोष अवरोध के भय (वर्णन) में डालने की तैयारी करके रात्रि प्रच्छन्न गृह अतिचार/रात्रि प्रच्छन्न गृह भेदन किया।

धारा 459 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने रामलाल के मकान यथा (वर्णन) गृह भेदन/गृह अतिचार (कृत्य का वर्णन) करते समय रामलाल की घोर उपहति कारित की या उसकी मृत्यु या घोर उपहति कारित करने का प्रयत्न कियां

धारा 460 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 एवं 02–01–1998 के मध्य रात्रि में तुम अ/ब/स/द/फ रामलाल के मकान में यथा (वर्णन करें) प्रच्छन्न गृह अतिचार गृह भेदन (कृत्य का वर्णन) करते समय रामलाल की मृत्यु/घोर उपहति कारित की/या मृत्यु/घोर उपहति/कारित करने का प्रयत्न किया अतः ऐसे रात्रि प्रच्छन्न गृह अतिचार / रात्रि गृह भेदन करने में सयुक्ततः सम्प्रक्त तुम अ/ब/स/द/फ ने धारा 460 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

धारा 461 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने रामलाल के आधिपत्य का बंद पात्र यथा (घुमटी आदि) जिसमें संपत्ति रखी हो या जिसमें संपत्ति बंद होने का तुम्हें विश्वास था बेईमानी से/रिष्टि करने के आशय से तोड़ कर खोला/उद्‌बन्धित किया।

धारा 462 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को तुमने बंद पात्र यथा (घुमटी आदि) जिसमें संपत्ति रखी हो या जिसमें संपत्ति होने का तुम्हें विश्वास हो या जिसमें संपत्ति होने का तुम्हें विश्वास था को तुम्हें न्यस्त की गई थी तथा जिसे खोलने का प्राधिकार नहीं था, को बेईमानी से /रिष्टि करने के आशय से तोड़ कर खोला अथवा उद्‌बन्धित किया।

धारा 465 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1997 को या (ज्ञात कालावधि हो तो लिखें) अभिलेख यथा (विस्तृत खुलासा करें) की कूट रचना इस आशय से की कि रामलाल को नुकसान/क्षति कारित की जा सके/किसी दावे या अधिकार का समर्थन किया जा सके या कारित किया जाए कि कोई व्यक्ति यथा (नाम) का संपत्ति को पृथक कर दें/कोई अभिव्यक्त करे अथवा ऐसा कृत्य किया (कपट का उल्लेख करें) और इसके द्वारा ऐसा अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 465 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 466 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1997 को या (ज्ञात कालावधि हो तो लिखें) एक विलेख या अभिलेख यथा (वर्णन करें) होना तात्पर्यित है, कि कूट रचना की।

धारा 467 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को (ज्ञात कालावधि हो तो उल्लेख) विलेख यथा (वर्णन करें) जो कि मूल्यवान प्रतिभूति/रामलाल द्वारा किया मृत्यु पत्र/हीरालाल को रामलाल द्वारा दत्तक ग्रहण करने का अधिकार/रामलाल को मूल्यवान प्रतिभूति यथा (वर्णन करें) को अंतरण करने का प्राधिकार/होना तात्पर्यित था की कूट रचना इस आशय से की (आशय स्पष्ट करें) और इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो भा.द. वि. की धारा 467 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 468 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को (ज्ञात कालावधि हो तो लिखें) तुमने एक विलेख यथा (उल्लेख करें) की कूट रचना इस आशय से की कि वह छल के प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाएगा।

धारा 469 भा.द.वि.

दिनांक 01–01–98 को (ज्ञात कालावधि हो तो लिखें) को एक विलेख यथा (विलेख का वर्णन) की कूट रचना इस आशय से की कि उक्त विलेख रामलाल की ख्याति की अपहानि करने में उपयोग में लाया जा सकेगा/संभाव्य जानते हुए कि उक्त विलेख रामलाल की ख्याति की अपहानि करने के प्रयोजन से उसका उपयोग किया जाएगा।

धारा 498–ए भा.द.वि.

दिनांक 01–01–1998 को (अथवा निर्दिष्ट कालावति का स्पष्ट करें) महिला कला को तुमने, जो कि उसके पति है/पति के अमुक नातेदार है, ने क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया।

धारा 504 भा.द.वि.

दिनांक 10–03–1998 को तुमने मगन का यथा (कृत्य का वर्णन करें जैसे मौखिक या लिखित रूप से जो भी कृत्य किया हो) साशय अपमानित किया तथा ऐसा कृत्य इस आशय से या यह संभाव्य रूप से जानते हुए प्रकोपित किया कि वह उस प्रकोपन से शांति भंग कर सके।

धारा 506 (भाग–1) एवं (भाग–2) भा.द.वि.

दिनांक 10–01–98 को तुमने रतन को अथवा उसके संपत्ति को या ख्याति को (या उसके हितबद्ध व्यक्ति के शरीर संपत्ति या ख्याति को) क्षति कारिक करने की धमकी इस आशय से देकर अभित्रस्त कारिक किया कि उसे संत्रास उत्पन्न हो (अथवा ऐसी धमकी निष्पादन को परिवर्तन करने के साधन स्वरूप कोई ऐसा कार्य किया यथा (वर्णन) जिसे करने के लिए वह वैध रूप से आबद्ध न हो/या किसी ऐसे कार्य को करने का लोप कराया जाए जिसे करने के लिए वह वैध रूप से हकदार हो फलस्वरूप तुमने वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 506 (भाग–एक) के अंतर्गत दंडनीय है तथा जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

यदि धमकी मृत्यु या गंभीर उपहति या आगजनी से संपत्ति नष्ट करने के विषय में हो अथवा मृत्युदंड से दंडनीय अपराध, आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध या सात साल तक का दंडनीय अपराध हो अथवा महिला के चरित्र पर लांछन लगाने के विषय में हो तो वे तथ्य का खुलासा कर धारा 506 (भाग–दो) शब्द प्रयोग करें।

धारा 509 भा.द.वि.

दिनांक 11–11–1997 को महिला कलीबाई की सलज्जता का अनादर कारित करने के आशय से कृत्य (शब्द/ध्वनि/सुनी जाय अथवा अंग विक्षेप/या का प्रदर्शन जिसे देखा जा सके) या उक्त स्त्री की एकांत का अतिक्रमण हो सके। और इस प्रकार वह अपराध किया जो भा.द.वि. की धारा 509 के अंतर्गत दंडनीय है।

धारा 457/511

दिनांक 09-3-1998 एंवं 10-3-1998 की मध्य रात्रि में सूर्यास्त के पश्चात् एवं सूर्योदय के पूर्व रामलाल का बंद दरवाजा तोड़ कर घर में घुसने हेतु दरवाजे को धकेलने का प्रयत्न किया और इस प्रकार धारा 457/511 भा.द.वि. के अंतर्गत अपराध कारित किया।

विशेष आरोप पत्र प्रारूप

एक से अधिक अभियुक्त एवं परिवादी होने पर चार्ज का प्रारूप

धारा 324, 323/34: 323, 324/34 भा.द.वि.

एकं ही प्रकरण में एक से अधिक अभियुक्त हो तथा एक से अधिक परिवादी हो तो तथा यदि अपराधिक कृत्य समान आशय से किया गया है तो चार्ज तैयार करने का एक प्रारूप इस प्रकार का हो सकता है :

यथा, रामलाल ने श्यामलाल को चाकू मारा

हीरालाल ने पन्नालाल को लाठी से मारा।

रामलाल हेतु चार्ज इस प्रकार निर्मित होगा :–

प्रथमतः रामलाल ने श्यामलाल को स्वेच्छया चाकू से, जो काटने का आयुध है, उपहति कारित की एवं ऐसा अपराध कारित किया जो भा.द.वि. की धारा 324 के अंतर्गत दंडनीय है।

द्वितीयतः उसी समय, स्थान एवं दिनांक (उल्लेख करें) तुमने हीरालाल के साथ यह आशय, श्यामलाल एवं पन्नालाल को स्वेच्छया उपहति कारित करने का निर्मित किया एवं, उक्त आशय से अग्रसर कारित करने में हीरालाल ने पन्नालाल को स्वेच्छया उपहति कारित की तथा तब तुम यह जानते थे कि उक्त कार्य समान आशय को अग्रसर कारित करने में किया जाएगा। तथा इस प्रकार तुमने वह अपराध किया जो धारा 323/34 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

हीरालाल हेतु चार्ज इस प्रकार निर्मित होगा :–

प्रथमतः हीरालाल ने पन्नालाल को स्वेच्छया उपहति कारित की एवं धारा 323 भा. द.वि. का अपराध कारित किया।

द्वितीयतः उसी समय, स्थान व दिनांक को (उल्लेख कर सकते हो) तुमने रामलाल के साथ समान आशय श्यामलाल एवं पन्नालाल को स्वेच्छया उपहति कारित करने का निर्मित किया एवं उक्त आशय को अग्रसर कारित करने में रामलाल ने श्यामलाल को चाकू जो काटने का आयुध है से स्वेच्छया उपहति कारित की तथा तब तुम यह जानते थे कि उक्त कार्य समान आशय को अग्रसर कारित करने में किया जा रहा है तथा तुमने धारा 324/34 भा.द.वि. का अपराध कारित किया।

विशेष : आरोप पत्र प्रारूप

धारा 323/204 भा.द.वि.

(आवश्यकतानुरूप परिवर्तन करें) मैं स.दा.सत्य न्यायिक दंडाधिकारी वर्ग 1/2 तुम हल्लामल पुत्र गुल्लामल पर नीचे अनुसार आरोप लगाता हूँ कि : तुमने दिनांक 1 जनवरी 1996 को आरक्षी केंद्र कोतवाली इन्दौर के अंतर्गत आरक्षी केंद्र से लगभग 2 कि. मी. दूर पर नेहरू पार्क क्षेत्र में

प्रथमतः रामलाल को स्वेच्छया उपहति कारित की एवं ऐसा अपराध कारित किया जो धारा 323 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय है।

द्वितीयतः उसी समय, स्थान व दिनांक को तुमने लोक स्थान नेहरू पार्क में रामलाल को अश्लील शब्द (उल्लेख करें) उच्चारित कर सुनाए तथा उससे रामलाल एवं अन्य लोगों को क्षोभ उत्पन्न किया एवं ऐसा अपराध किया जो धारा 294 भा.द.वि. के अंतर्गत दंडनीय अपराध है। और जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

अतः में यह आदेशित करता हूँ कि तुम पर आरोपित उपरोक्त दोषारोपण पर विचारण किया जाय।

दिनांक

हस्ताक्षर
(स.दा.सत्य)

CERTAIN OFFENCES DECLARED COGNIZABLE

Notification No. 33205-F. No. 6-59-74-B-XXI Dated The 9th November 1975 : In exercise of the powers conferred by sub-section (1) of section 10 of the Criminal Law Amendment Act, 1932 (No XXIII of 1932) and in supersession of all the notifications previously issued on the subject, the State Government hereby declares that any offence punishable under section 186, 189, 190, 228, sub section (1) of section 505,506 or 507 fo the Indian Penal Code (No XLV of 1860) when committed in any area of the State of Madhya Pradesh, shall be cognizable. ***1976 M.P.L.T. Pt. II, page 106 (No. 105).***

धारा 25 (1–बी)ए

दिनांक 01–01–1998 को ग्राम बांदकपुर में तुम अपने अधिपत्य में, एक चालू संचालनीय (वर्किंग) स्थिति वाला आग्नेय आयुध यथा पिस्तौल बंदूक/रिव्हालवर आदि बिना वैध अनुज्ञप्ति के रखे हुए थे व इस प्रकार तुमने धारा 25 (1–बी)ए सहपठित धारा 3 आर्म्स एक्ट (आयुध अधिनियम) के अंतर्गत दंडनीय अपराध कारित किया।

धारा 25 (1–बी) बी

दिनांक 01–01–1998 को ग्राम बांदकपुर में तुम अपने आधिपत्य में एक अवैध शस्त्र यथा चाकू/भाला/तलवार आदि (आकार का वर्णन) बिना वैध अनुज्ञप्ति के रखे हुए थे वे ऐसा आधिपत्य म. प्र. राज्य शासन के अधिसूचना (नोटिफिकेशन) (वर्णन करें) के विपरीत है (यहां वर्णन देना जिसका खुलासा नीचे दिया है) और इस प्रकार तुमने धारा 25 (1–बी) बी सहपठित धारा 4 आर्म्स एक्ट (आयुध अधिनियम) के अंतर्गत दंडनीय अपराध कारित किया।

ARMS ACT: POSSESSION OF KNIVES ETC. ILLEAGAL

Notification No. 6312-6552-II-B (i) Dated The 22nd November, 1974: Where as the State Government is of the opinion that having regard to the prevailing conditions in the State of Madhya Pradesh, it is necessary and expedient in the public interest that the acquisition possession and carrying of sharp edged weapons with a blade more than 6 inches long 2 inches wide and spring actuated knives with a blade of any size in public places should also be regulated.

Now therefore in exercise of the powers conferred by section 4 of the Arms Act, 1959, (No 54 of 1959) read with the Government of India, Ministry of Home Affairs, Notification No. G.S.R. 1309, dated the 1st October 1962, the State Government hereby directs that the said section shall apply with effect from the date of publication of this Notification in the "Madhya Pradesh Gazette" to the whole of rhe State of Madhya Pradesh in respect of acquisition, possession or carrying of sharp edged weapons with a blade more than 6 inches long or 2 inches wide and spring actuated knives with a blade of any size in public places only.

S. 188 AND S. 506 I.P.C. DECARED NON-BAILABLE

Notification No. 33207-F-No. 659-74-B-XXI Dated The 19th November 1975 : In exercise of the powers conferred by sub-section (2) of section 10 of the Criminal Law Amendment Act, 1932 (No. XXIII of 1932) and in supersession of all the notifications previously issued on the subject the State Government hereby declares that any offence punishable under section 188 or 506 of the Indian Penal Code (No. XLV of 1860), when commited in any part of State of Madhya Pradesh shall be non-bailable. ***1976 M.P.L.T. Part II page 1906 (No. 106).***

धारा 27 आर्म्स एक्ट

दिनांक 01–01–98 को विधि विरूद्ध प्रयोजन के लिए उपयोग में लाने के आशय से आयुध बन्दूक का उपयोग चलाकर किया व रामकिशन व माधवसिंग को बन्दूक से चोटें पहुँचाई और इस प्रकार तुमने धारा 27 आर्म्स एक्ट का अपराध किया जो इस न्यायालय के संज्ञान के अंतर्गत है।

विस्फोटक अधिनियम धारा 5

दिनांक 14–8–1982 को शाम 5 बजे करबी नागलवाड़ी थाने के अंतर्गत 7 किलोमीटर उत्तर में कस्बा ओझर बेड़ीपुरा में तुम अपने मकान पर अवैध रूप से 28 किलो विस्फोटक फटाके बिना लायसेंस के कब्जे में रखे हुए थे तथा फटाकों का निर्माण कर रहे थे और इस प्रकार तुमने धारा 4 (घ) सहपठित धारा 5 एवम् धारा 9 बी 3 (ख) विस्फोट अधिनियम 1884 का अपराध कारित किया।

विस्फोटक पदार्थ अधिनियम धारा 2–4

उसी समय स्थान व दिनांक को तुमने अपने कब्जें में विस्फोटक पदार्थ क्लोरोरेड सल्फाइड, पोटेशियम एवं आर्सनिक पदार्थ पत्थर कंकड़ अपने कब्जे में रखे थे जिससे जीवन या संपत्ति जोखिम में पड़ सकती थी तथा गंभीर क्षति होने की संभावना थी एवं ऐसा करने के लिए फटाखों का निर्माण कर रहे थे। और इस प्रकार तुमने धारा 2 एवं 4 विस्फोटक पदार्थ अधिनियम 1908 के तहत अपराध कारित किया।

विस्फोटक पदार्थ अधिनियम धारा 2–5

उसी समय, स्थान व दिनांक को तुमने विस्फोटक पदार्थ क्लोरोरेट सल्फाइट, पोटेशियम आर्सनिक एवं कंकड़ आदि का मिश्रण अपने कब्जे में रखा और ऐसा कृत्य विस्फोटक पदार्थ बनाने के लिए जैसे मिसाइल बनाने के लिए उपयोग में लाया और ऐसा अपने कब्जे में रखने के लिए युक्तियुक्त रूप से या संदेह उत्पन्न होता हो कि वह उसे विधिपूर्ण उद्देश्य के लिए नहीं बनाया जा रहा है। इस प्रकार तुमने धारा 2 सहपठित धारा 5 विस्फोटक पदार्थ अधिनियम 1908 के तहत् अपराध कारित किया।

विस्फोटक अधिनियम धारा 5

उसी समय, स्थान व दिनांक को तुमने विस्फोटक पदार्थ हेन्डग्रेनेड (हथगोला) अपने कब्जे में रखा और लक्ष्मीप्रसाद, रामकिशन और माधवसिंग पर फेंककर मारा और ऐसा करके तुमने धारा 5 (3) (ख) सहपठित धारा 9 बी (3) (ख) भारतीय विस्फोट अधिनियम 1884 (तीन बार) के तहत् अपराध किया।

वाद प्रश्नों की निर्मिति

पुरुषोत्तम विष्णु नामजोशी

विधि प्रावधानों को देखने से ऐसा प्रतीत हागा कि आ. 14 व्यवहार•प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत नियम–1 में दिये गये निर्देशों के अनुरूप वाद प्रश्न निर्मित होंगे। प्रथम दृष्टया बात सही भी है। लेकिन यह एक तत्व है, पूर्ण सत्य नहीं। वाद प्रश्न की निर्मिति कई सिद्धांतों पर आधारित है। म.प्र. सिविल कोर्ट एक्ट के अंतर्गत बने नियमों "नियम एवं आदेश सांपत्तिक" के नियम क्रमांक 144 व 145 को भी ध्यान रखना होगा। उसमें भी मार्गदर्शनात्मक सिद्धांत हैं। फिर धारा 101 एवं 102 एवं तत्सम प्रावधान साक्ष्य अधिनियम तथा इसी अधिनियम की धारा 3 में वर्णित शब्द तथ्य अर्थात फैक्ट एवं विवाद्यक अर्थात फैक्ट इन इश्यू को भी ध्यान में रखना होगा उसी प्रकार इसी अधिनियम की धारा 5 एवं व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 2 को भी विचार में लेना होगा। वाद प्रश्न निर्मिति हेतु व्यवहार प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, 8, 9, 10, 11, 12 एवं 13 की ओर भी ध्यान देना होगा। आदेश 20 नियम 4 का भी इस विषय के संबंध में महत्व है। दावे की विषय वस्तु क्या है इस आधार से भी वाद प्रश्नों को बनाने हेतु उस विषय से संबंधित प्रावधानों का ज्ञान होना जरूरी है। जैसे प्रोमेसरी नोट के आधार से दावा लगाया गया है तो हमें पराक्रम्य लिखित अधिनियम (निगोशियेबल इन्स्ट्रूमेंन्ट एक्ट) के प्रावधानों का ध्यान रखना होगा। यदि विनिर्दिष्ट सहायता की मांग की है तो उक्त विषय से संबंधित अधिनियम विनिर्दिष्ट सहायता अधिनियम को भी ध्यान में रखना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि यह कार्य चुटकियाँ बजाकर होने वाला नहीं है न ही इस कार्य को करने हेतु न्यायालयीन कर्मचारी अथवा अधिवक्ता पर जिम्मेदारी डाली जा सकती है। वाद प्रश्न बनाने के दो सबसे निकृष्ट माध्यम हैं। जो न्यायिक अधिकारी परिश्रम करना नहीं चाहता या कार्य करना नहीं चाहता लेकिन कभी कभी वाद प्रश्न बनाने की उसे मजबूरी हो ही जाती है तो वह दो आसान माध्यमों से वाद प्रश्नों की कथित रूप से रचना करता है। यथा दावे में लिखि प्रत्येक सहायता के संबंध में वह वाद प्रश्न बना देता है जैसे :

1. क्या वादी प्रतिवादी से रूपये 12 प्रतिवर्ष प्रतिशत ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है?
2. क्या वादी प्रतिवादी से रु. 1,000/– मूलधन प्राप्त करने का अधिकारी है?
3. क्या वादी प्रतिवादी से विक्रय पत्र निष्पादित करा पाने का अधिकारी है?
4. क्या वादी विनिर्दिष्ट सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है?
5. क्या प्रतिवादी को विक्रय अनुबन्ध पूर्ति पेटे रुपये 1000 अथवा दावे में लिखे गए

प्रत्येक अभिकथन के आधार से वाद प्रश्न बना देता है जैसे, क्या वादी के पिता स्वर्गवासी हुए थे?

6. क्या प्रोनोट रामलाल–श्यामलाल के सामने निष्पादित हुआ?
7. क्या वादी ने प्रतिवादी को रुपये 10,000/– 100–100 के नोट के रूप में दिये थे अथवा कि 500–500 रुपये के नोट दिये थे?
8. क्या प्रोनोट सुबह के समय या शाम के समय निष्पादित हुआ था।
9. क्या वादी ने प्रतिवादी को रुपये 10,000 नगद उधार नहीं दिए थे?
10. क्या वादी ने प्रतिवादी को रुपये 10,000 नगद उधार दिए थे?

अर्थात प्रतिवादी ने यदि कोई बात मना की है तो उसका भी वाद प्रश्न और वादी ने कोई बात कही है तो उसका भी वाद प्रश्न। ब्याज के संबंध में ही कम से कम 8–10 वाद प्रश्न बनाए जा सकते हैं। जैसे वादी बैंक ने 12 रू. प्रतिवर्ष प्रतिशत त्रैमासिक बची शेष रकम पर ब्याज मांगा है व किश्तों के चूक जाने के कारण 14 प्रतिशत ब्याज मांगा है व प्रतिवादी ब्याज की शर्त, ब्याज की दर, ब्याज का अनुबंध अस्वीकार करत है व कहता है कि सूदखोरी कर्जा अधिनियम (युजिरिअस लोन्स एक्ट) के प्रावधान लागू होते हैं तो इसी बिना पर हम हर मुद्दे पर वाद प्रश्न निर्मित करेंगे लेकिन मूल मुद्दा, प्रश्न विचार, विवाद्यक की महत्ता को हम दृष्टि आड़ कर लेते हैं। अतः वाद प्रश्न बनाते समय दावे की विषय वस्तु उस दावे का आधार एवं विधि संबंधी प्रावधान व दावे के तत्वों पर से हमारा ध्यान हटना नहीं चाहिए।

यह बात भी ध्यान में रखना चाहिए कि यदि पक्षकारों के अभिकथनों के अतिरिक्त प्रकरण के निराकरण के लिये ऐसा कोई मुद्दा सामने है जिस पर निर्णय होना चाहिये तो विवाद्यक का निर्माण करना चाहिये यथा (Issues may be framed by reference to other matter besides pleadings ए.आय.आर. 1964 कलकत्ता 209) अर्थात अभिकथनों के सिवाय अन्य संदर्भित तथ्यों के आधार से भी वाद प्रश्न बनाए जाना चाहिये जहाँ ऐसा करना आवश्कय है। जैसे यदि पक्षकरों ने मर्यादा संबंधी तथ्य पर मौन धारण किया है व न्यायालय यह मानता है कि दावा संभवतः अवधि बाध्य भी हो सकता है तब भी वाद प्रश्न इस मुद्दे पर बनाना होगा क्योंकि धारा 3 मर्यादा अधिनियम न्यायालय पर कर्त्तव्य निर्धारित करती है कि दावा यदि अधिक बाह्य है तो उसे न्यायालय खारिज करेगी। उसी प्रकार विनिर्दिष्ट सहायता अधिनियम की धारा 16 (सी) एवं उससे संबंधित स्पष्टीकरणों को देखने से ज्ञात होता है कि वादी को यह सिद्ध करना होगा कि वादी अनुबंध के अंतर्गत मर्मभूत निबन्धनों का, जो उसके द्वारा पालन किए जाने है, उसने पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए वह सदा तैयार और सहमत रहा है।

आदेश 6 नियम 2 व्यवहार प्रक्रिया संहिता में बताया गया है कि पक्षकारों ने अभिकथन किंस प्रकार से करना चाहिये। उसमें कहा है कि केवल तात्विक तथ्यों का अभिवचन किया जाएगा न कि साक्ष्य का अर्थात जो तथ्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध होना है उस साक्ष्य का अभिकथन नहीं होगा अपितु तात्विक तथ्यों का जिस पर पक्षकार अपना दावा अथवा प्रतिरक्षा निर्भर करते हैं, कथित होगा। जैसा कि स्पष्ट है वाद प्रश्न हमेशा अभिकथनों के आधार से निर्मित होते हैं व अभिकथनों में साक्ष्य सम्मिलित नहीं होगी अतः अपेक्षित साक्ष्य के आधार से वाद प्रश्न नहीं बनेंगे। इसलिए वाद प्रश्न केवल तथ्यात्मक एवं विधि संबंधी मात्र बनेंगे। इसी संबंध में आदेश एवं नियम सिविल के नियम 145 (जी) की ओर ध्यान आकृष्ट करना उचित होगा जिसमें कहा गया है कि "No proposition of fact which is not itself a material proposition but is relevant only as tending to prove a material proposition shall be made the subject of an issue." अर्थात कोई भी तथ्यात्मक प्रतिपादन जो स्वयं में तात्विक प्रतिपादन नहीं है अपितु केवल तात्विक तथ्य सिद्ध करने हेतु प्रवृत्त करने हेतु सुसंगत है को वाद प्रश्न का भाग नहीं बनाया जा सकेगा। यही बात आदेश 14 नियम 1 में भी कही गयीहै। आदेश 14 नियम 1(1) कहा गया है कि विवाद्यक तब उत्पन्न होता है जब कि तथ्य या विधि की कोई तात्विके प्रतिपादित बात एक पक्षकार द्वारा प्रतिज्ञात की जाती है एवं दूसरे पक्षकार द्वारा प्रत्याख्यात की गई हो। उपनियम 2 में भी यह भी कहा गया है कि तात्विक प्रतिपादित तथ्य वे विधि या तथ्यों संबंधी प्रतिपादनाएं हैं जिन्हें वाद संस्थित करने हेतु अपना अधिकार दर्शित करने के लिए वादी को अभिकथित करना है अथवा अपनी प्रतिरक्षा के गठित करने के लिए प्रतिवादी को अभिकथित करना है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वाद प्रश्न केवल तात्विक तथ्यों के आधार से बनाना है न कि वर्णनात्मक अथवा स्पष्टीकरणात्मक अभिकथनों के आधार से। जैसे, प्रत्येक अभिकथन जो वादी ने दावे में किया है व प्रतिवादी ने प्रत्येक अभिकथन जो प्रतिवाद में अस्वीकृत किए हैं के आधार से वाद प्रश्न नहीं बनेंगे अपितु केवल तात्विक सारवान (मटेरियल) तथ्यों के आधार से बनेंगे न कि सुसंगत तथ्य जो तथ्य को सिद्ध करने हेतु आवश्यक है जैसा कि ***लेखराज विरुद्ध सरवणसिंह 1971 जे.एल.जे. 545*** में दर्शित किया है।

आदेश एवं नियम 144 को यदि आदेश 14 नियम 1(5) व आदेश 14 नियम 3 एवं 4 के साथ पढ़ें तो ज्ञात होगा कि वाद प्रश्न निर्मित के पूर्व आदेश 10 नियम 2 व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत लिपिबद्ध कोई कथन, आदेश 11 एवं 12 व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रकटीकरण व निरीक्षण तथा स्वीकृत विलेखों को विचार में लेकर एवं दावे के अभिकथनों को पढ़कर व पक्षकार–अधिवक्ता को सुनकर वाद

प्रश्न निर्मित होते हैं। वाद प्रश्न निर्मित के दिन तक आ. 13 नियम–1 व्यवहार प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत विलेखों को भी देखना आवश्यक है व तत्पश्चात वाद प्रश्न की निर्मिति होती है।

वाद प्रश्न सर्वसामान्य रूप से नकारात्मक नहीं बनाना है। स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिये कि साक्ष भार किस पर है। वैकल्पिक रूप से भी ऐसे वाद प्रश्न नहीं बनाना चाहिये जिससे एक वाद प्रश्न का भार एक पक्ष पर तो वैकल्पिक वाद प्रश्न का भार दूसरे पक्ष पर चला जावे। जैसे, क्या प्रतिवादी ने वादी से नगद रकम उधार नहीं ली? वैकल्पिक रूप से क्या प्रतिवादी को वादी ने उधारी से नगद रकम दी थी? साक्ष्य भार किस पर होगा इसका खुलासा धारा 101 से धारा 114 साक्ष्य अधिनियम में बताया गया है। अतः वाद प्रश्न निर्मित के समय इस बात का ध्यान रखना होगा। दावे में यदि यह लिखा हो कि वादी के पिता की मृत्यु 01.01.1998 को हुई। प्रतिवादी की ओर से यह कहा गया कि वादी की मृत्यु 02.01.1998 को हुई। यदि मृत्यु का संबंध प्रकरण में गुणदोष के विषय में नहीं है तो वाद प्रश्न बनाना ही नहीं चाहिये। क्योंकि वादी के पिता चाहे 01 तारीख को या 02 तारीख को मृत्यु को प्राप्त हुए हों तब भी प्रकरण के निर्णय पर कोई गुणात्मक अंतर आने वाला नहीं है। इस संबंध में आदेश 14 नियम (1) (5) व्यवहार प्रक्रिया संहिता की शब्दावली ध्यान में रखने योग्य है। उसमें कहा गया है कि "..... and shall there upon proceed to FRAME and RECORD the issues on which the **RIGHT DECISION** of the case appears to depend." अर्थात ".....तब वह उन विवाद्यकों की विरचना और अभिलेखन करने के लिए अग्रसर होगा जिनके बारे में यह प्रतीत होता है कि प्रकरण का **ठीक विनिश्चय** उन पर निर्भर करता है।" अर्थात वाद प्रश्न ऐसे हों जिन पर विनिश्चय निर्भर करें। उदाहरणार्थ यदि हिन्दू विधि (स्वकीय निधि) के अंतर्गत हिन्दू उत्तराधिकारी अधिनियम के अंतर्गत प्रकरण है वह मृत्यु की तारीख के कारण उत्तराधिकारों में परिवर्तन संभावित हो तो वाद प्रश्न अवश्य बनाना चाहिये। यथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 दिनांक 18 जून 1956 से लागू हुआ। दावे में कुटुंब के कर्ता की मृत्यु 18 जून को हुई या 17 जून को या तत्पूर्व हुई इस विषय पर विवाद हो तो वाद प्रश्न इस आशय का बनाया जाना चाहिये कि वादी कुटुंब का कर्ता रामलाल की मृत्यु किस दिनांक को हुई? अथवा रामलाल की मृत्यु किस दिनांक को हुई?

एक प्रश्न बार–बार यह पूछा जाता है कि एक पक्षीय प्रकरणों में वाद प्रश्न बनना चाहिये या नहीं? वैसे तो आदेश 14 नियम 1(6) में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं है जहाँ प्रतिवादी ने कोई प्रतिरक्षा नहीं की है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वाद प्रश्न अथवा दूसरे शब्दों में विचारणीय बिन्दु नहीं

बनेंगे। उस संबंध में दो दृष्टांतों का उल्लेख किया जा सकता है। ***मोहनलाल विरुद्ध यूनियन 1962 जे.एल.जे. टीप क्रं. 269*** तथा ***नगरपालिका विरुद्ध मोतीलाल ए. आय.आर. 1977 पृष्ठ 182*** यद्यपि प्रथम दृष्टांत को द्वितीय दृष्टांत द्वारा पलट दिया गया है व कहा है कि एक पक्षीय निर्णय में न्यायालय वादी का वाद खारिज कर सकता है व ऐसा करने के पूर्व वादी को सचेत करने की आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में अन्य चर्चा (विषयान्तर हो जाने की संभावना से) नहीं की जा रही है। लेकिन हम आपका ध्यान आदेश 20 नियम 4 (2) की ओर आकृष्ट करना जरूरी है। उसमें कहा है कि अन्य न्यायालयों के (लघुवाद न्यायालयों से भिन्न) निर्णयों के मामले का संक्षिप्त कथन, अवधार्य प्रश्न (विचारणीय बिन्दु) और ऐसे विनिश्चय के कारण अर्न्तविष्ट होंगे। अर्थात विचारणीय बिंदु यदि न्यायालय को निर्णय के संबंध में निर्धारित कर के निर्णय देना है तब क्यों न वादी की एक पक्षीय साक्ष्य प्रारंभ होने के पूर्व वादी को बताया जावे कि प्रकरण में क्या विचारणीय बिंदु हैं व न्यायालय वादी से किस प्रकार का साक्ष्य अपेक्षित करता है। वास्तव में वादी को विचारणीय बिंदु प्रारंभ में न बताना व निर्णय के समय न्यायालय द्वारा अपने ही मन से कुछ बिन्दुओं को निर्धारित कर वादी के विरुद्ध कर देना विधि शास्त्र के सिद्धांत के विरुद्ध होने की संभावना कम नहीं है। अतः उचित तो यही हो सकता है कि विविध प्रकरणों में तथा मूल प्रकरणों में जहाँ प्रतिवादी एक पक्षीय हो वहाँ भी अवधार्य प्रश्न (विचारणीय प्रश्न) अवश्य ही बनाना न्यायसंगत एवं तर्क संगत होगा।

यहाँ इस बात का विचार भी समय के साथ उचित होगा कि आदेश 14 नियम 2 के अंतर्गत केवल दो मुद्दों पर ही प्रारंभिक वाद प्रश्न निर्णित किए जा सकते हैं। एक प्रश्न क्षेत्राधिकार के संबंध में तथा दूसरा प्रश्न किसी विधि द्वारा सृष्ट वाद वर्जन किया गया हो। अर्थात आर्थिक व भौतिक क्षेत्राधिकार एवं आदेश 7 नियम 11 (डी) के अंतर्गत वाद का वर्जन आदेश 14 नियम 2 (2) को पढ़ेंगे तो ज्ञात होगा कि "केवल विधि विवाद्यक के आधार" अर्थात on an issue of law only शब्द का प्रयोग हुआ है अतः शुद्ध विधि संबंधी प्रश्न एवं विधि एवं तथ्य संबंधी संयुक्त प्रश्न पर कोई भी वाद प्रश्न प्रारंभिक वाद प्रश्न के रूप में निर्णित नहीं होगा। (विधि तथा तथ्य संबंधी प्रश्न क्या होते हैं इसके लिए कृपया लेख जोती जर्नल वर्ष–3, भाग–3 जून 1997 का अंक देखें)। संक्षिप्त रूप से कहा जा सकता है कि जहाँ पर आपको पेन उठाकर कागज पर साक्ष्य लिपिबद्ध करना हो व तत्पश्चात कोई वाद प्रश्न प्रारंभिक वाद प्रश्न निर्धारित करना हो तो ऐसा कार्य निषिद्ध है। कृपया **ए.आय.आर. 1980 देहली 121 एवं ए.आय.आर. 1979 मध्यप्रदेश 153** (पूर्ण पीठ) के दृष्टांत अवलोकनीय होंगे।

वाद प्रश्न निर्मित करना उतना ही कठिन व कला कौशल वाली बात है जितनी कि उच्च कोटि की कढ़ाई–बुनाई, कशीदाकारी ड्राईंग, पेंटिग आदि कला से संबंधित

बातें होती है। वाद प्रश्न जितने सटीक होंगे प्रकरण में आंवांतर, निरर्थक साक्ष्य नहीं आएगी व शीघ्र एवं प्रभावपूर्ण निर्णय देना आसान होगा। अर्थात यदि आपके वाद प्रश्नों का पाया मजबूत है, नींव पक्की है तो निश्चित मानों कि प्रकरणों का निराकरण सक्षमतापूर्वक होगा। आदेश 14 नियम 5 व्यवहार प्रक्रिया संहिता से संबंधित विषय पर पृथक से लेख लिखा जा सकेगा व बताया जा सकेगा कि ऐसे आवेदन पत्र किस प्रकार निराकृत होना चाहिये।

अंत में लेकिन अंतिम रूप से नहीं एक बात यह भी कही जाना चाहिए है कि कोई विलेख साक्ष्य में ग्राह्य होगा या नहीं इस विषय पर कोई भी वाद प्रश्न नहीं बनना है। तीन भिन्न दृष्टांत म. प्र. उच्च नयायालय के हैं ठीक से पढ़ लें। ये दृष्टांत हैं :

1. ***1981 (भाग-1) वि.नो. 249 बालकृष्ण विरुद्ध विशंभरनाथ***
2. ***1979 (1) वि.नो. 316 राधावल्लभ विरुद्ध राधेश्याम***
3. ***1981 (भाग-1) वि.नो. 268 राधेश्याम वरिद्ध बसन्तीलाल***

नियम एवं आदेश सिविल में नियम 145 (एच) में स्पष्ट शब्दों में यही बात कही गई है।

इस लेख द्वारा वाद प्रश्नों की रचना करने का महत्व समझाने का प्रयास है। यह भी प्रयास है कि दैनंदिनी कार्य में जो वाद प्रश्न सामान्य रूप से बनते हैं या बनाए जाना चाहिये उनके नमूने दिए हैं व खुलासा करने के लिए टीप भी दी है। ये स्वयं में पूर्ण नहीं हैं। केवल चिंतन के रूप में विचारों को गति प्रदान करने के लिए विषय की प्रस्तावना मात्र है। आप आवश्यकता अनुसार परिर्वतन परिवर्धन भी कर सकते हैं या इन्हें उपेक्षित भी कर सकते हैं। चिंतन का प्रश्न आपका अपना है। सामग्री को जुटाने का कार्यमात्र किया है। यह सामग्री शादी ब्याह के लिए आयोजित भोज जैसी नहीं है अपितु सामान्य परिवार के लिए न्यूनतम आवश्यक दाल रोटी की किसी सीमा तक पूर्ति का प्रयत्न भर है। नमूने के वाद प्रश्न व टिप्पणियाँ पृथक से दी हैं।

एक तथ्य बताना यहाँ सुसंगत होगा कि कोई भी वाद प्रश्न निर्धारित करते समय ऐसा न लिखें कि यह वाद प्रश्न मैं सकारात्मक/नकारात्मक निर्णित करता हूँ। ऐसा करने के कारण निर्णय पढ़ने वाले को बात समझ में नहीं आती कि न्यायालय ने क्या निष्कर्ष निकाले हैं। यह तब और भी ज्यादा भ्रमपूर्ण हो जाता है कि जब वाद प्रश्न की संरचना ठीक से नहीं की हो। जैसे क्या वादी का वाद अवधि में नहीं है। इस वाद प्रश्न को आप क्या सकारात्मक निर्णित करेंगे और क्या नकारात्मक निर्णित करेंगे। निर्णय लिखने वाला स्वयं ही उलझन में है ऐसा लगेगा। प्रथमतः वाद प्रश्न ठीक से बने जैसे क्या वाद अवधि में हैं? निष्कर्ष निकालते समय यह लिखेंगे कि परिणामतः

यह निर्णित किया जाता है कि वादी का वाद अवधि में है / वादी का वाद अवधि बाह्य है।

निर्णय में यथा संभव (मैं) शब्द को टालने का प्रयत्न हो व उसके स्थान पर (यह न्यायालय) शब्द प्रयोग हो तो ज्यादा बेहतर उचित होगा। (मैं) की भावना भी कम होगी व यह अनुभव होगा कि मैं (मैं) नहीं अपितु न्यायालय है जिसकी ओर से हम कोई बात कह रहें हैं। मैं तो न्यायालय का केवल एक अकिंचन सेवक पीठासीन अधिकारी मात्र हूँ व जो कुछ कहा जा रहा है न्यायालय द्वारा कहा जा रहा है। ऐसी भावना जागृत होने से हम आप यह अनुभव करेंगे कि न्यायदान के प्रति हमारा कितना बड़ा गुरूत्तर दायित्व है।

हम आप भी कृपया इस दृष्टिकोण से देखें तो सहज संभव है कि कार्य सुगमता से, सुलभ गति से, शीघ्र गति से, न्यूनतम भूलों सहित बिना उलझन या किंकर्त्तव्यविमूढ़ता के पूर्ण होगा।

धारा 3 भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872

"तथ्य" से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आती है" :–

1- ऐसी कोई वस्तु, वस्तुओं की अवस्था या वस्तुओं का संबंध जो इन्द्रियों द्वारा बोध गम्य हो,

2- कोई मानसिक दशा, जिसका भान किसी व्यक्ति को हो।

"विवाद्यक तथ्य" से अभिप्रेत है और उसके अंतर्गत आता है :–

ऐसा कोई भी तथ्य जिसे अकेले ही से, या अन्य तथ्यों के संसंग में किसी ऐसे अधिकार, दायित्व या निर्योग्यता के, जिसका किसी वाद या कार्यवाही में प्राख्यान या प्रत्याख्यान किया गया है, अस्तित्व, अनस्तित्व, प्रकृति या विस्तार की उपपत्ति अवश्यमेव होती है।

स्पष्टीकरण : जब कभी कोई न्यायालय विवाद्यक तथ्य को सिविल प्रक्रिया से संबंधित किसी तत्समय प्रवृत्त विधि के उपबन्धों के अधीन अभिलिखित करता है, तब ऐसे विवाद्यक के उत्तर में जिस तथ्य का प्राख्यान किया जाना है, यह विवाद्यक तथ्य है।

06 नि 2 (1) अभिवचन में

आदेश 06 नियम 2 (1) अभिवचन में तात्विक तथ्यों का, न कि साक्ष्य का, कथन होगा– हर अभिवचन में उन पर तात्विक तथ्यों का, जिन पर अभिवचन करने वाला पक्षकार यथास्थिति, अपने दावे या अपनी प्रतिरक्षा के लिए निर्भर करता है और केवल उन तथ्यों का, न कि उस साक्ष्य का जिसके द्वारा वे साबित किए जाने हैं, संक्षिप्त अंतर्विष्ट होगा।

वाद प्रश्न प्रारूप

(प्रारूप वाद प्रश्न जिनका उपयोग नित्य रूप से होता रहता है)
आवश्यकतानुसार परिवर्तन करें

निष्कासन :

1. क्या प्रतिवादी वादी का विवादित स्थान घर नं.–4, बड़ा सराफा इन्दौर में किरायेदार है?
2. क्या किरायेदारी मासिक होकर प्रति अंग्रेजी माह के प्रथम दिनांक से प्रारंभ होती है?
3. क्या किरायेदारी लिखित होकर लेख प्रतिवादी द्वारा निष्पादित किया गया है?
4. किराये की दर क्या है?
5. क्या वादी विवादित स्थान का स्वामी होकर उक्त स्थान की वास्तविक रूप से सद्भावनापूर्वक अपने व्यवसाय/निवास स्थान के लिए सद्भावनापूर्वक आवश्यकता है एवं इस कार्य के लिए इन्दौर नगर–निगम क्षेत्र के अंतर्गत निज का अन्य कोई सुविधायुक्त स्थान उपलब्ध नहीं है?
6. क्या प्रतिवादी ने विवादित स्थान का उपयोग जिस कार्य के लिए व्यवसाय/निवास के लिए दिया था से भिन्न विपरीत उद्देश्य हेतु वादी के हितों के विपरीत परिवर्तित कर लिया है। यदि हाँ तो परिणाम?
7. क्या प्रतिवादी ने विवादित स्थान में अन्य व्यक्ति (नाम मालूम हो तो नाम लिखें) को वादी की लिखित सहमति के हस्तांतरित कर उप–किरायेदार रख दिया है? यदि हाँ तो परिणाम?
8. क्या वादी ने प्रतिवादी को निष्कासन हेतु सूचनापत्र दिया था? यदि हाँ तो क्या उक्त सूचना पत्र द्वारा प्रतिवादी की किरायेदारी विधिवत समाप्त होती है?
9. सहायता एवं व्यय।

घोषणा व स्थाई निषेधाज्ञा :

1. क्या वादी विवादित भूमि सर्वे नं. 123 क्षेत्रफल 2.5 हेक्टर भूमि जो ग्राम मूसाखेड़ी तहसील, परगना व जिला इन्दौर में स्थित है, का एकमात्र स्वामी व आधिपत्यधारी है?
2. क्या प्रतिवादी अपने कृत्य, घोषणा अथवा व्यवहार द्वारा वादी को यह सतत रूप

से अनुभव कराता रहा है कि वह वादी से उक्त भूमि का आधिपत्य जबरदस्ती लेगा?

3. क्या वादी ने यह वाद प्रतिवादी को अनुचित रूप से परेशान व कष्ट पहुँचाने के आशय से किया है? यदि हाँ तो क्या प्रतिवादी वादी से क्षतिपूर्ति राशि प्राप्त करने का अधिकारी है? यदि हाँ तो कितनी?
4. क्या वादी स्थाई निषेधाज्ञा की सहायता प्राप्त करने का अधिकार रखता है?
5. संहायता एवं व्यय।

भूमि संबंधी प्रकरण में वाद प्रश्न

1.अ– क्या विवादित भूमि सर्वे क्रमांक 175/1 ग्राम मूसाख़ेड़ी, तहसील परगना इन्दौर है तथा जिसका क्षेत्रफल 2 एकड़ है प्रतिवादी से वादी के पक्ष में विक्रय करने का अनुबंध किया था व आधिपत्य वादी को दिया था?

1.ब– क्या प्रतिवादी ने वादी से रुपये 18,000/– अनुबंध के कथित निष्पादन के समय रुपये 2,000/– तत्पश्चात प्राप्त कर लिये थे?

2. क्या वादी ने विवादित भूमि पर प्रतिवादी के साथ मिलकर दो साल के लिये भूमि अधबटाई पर लेकर आधिपत्य प्राप्त किया था?
3. क्या वादी विनिर्दिष्ट सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है?
4. सहायता एवं व्यय।

नोटः उक्त वाद प्रश्न क्र. 2 निर्मित करने की आवश्कयता नहीं है प्रारूप के रूप में मात्र बताया है। यह तथ्य तो प्रतिवादी की प्रतिरक्षा मात्र है। प्रतिवादी का कहना है कि उसके द्वारा संपत्ति विक्रय का अनुबंध नहीं किया गया।

विनिर्दिष्ट सहायता :

1. क्या प्रतिवादी ने विवादित संपत्ति मकान 56 डाबरी पीठा उज्जैन विक्रय करने का अनुबंध वादी के पक्ष में कर दिया है? (किया है?)
2. क्या वादी संविदा के निष्पादन व पूर्णता के लिए वे समस्त कृत्य करने हेतु तत्पर व इच्छुक है/या शब्दावली इस प्रकार हो सकती है

   क्या अनुबंध के अंतर्गत मर्मभूत निबन्धनों का जो उसके द्वारा पालन किया जाने है, उसनें पालन कर दिया है अथवा पालन करने के लिए वह सदा तैयार और सहमत रहा है?
3. सहायता एवं व्यय।

विविध वाद प्रश्न :

1. क्या वादी ने वाद का मूल्यांकन उचित रूप से किया होकर उचित न्याय शुल्क दिया है?
2. क्या वाद अवधि में है?
3. क्या प्रतिवादी की पत्नि प्रकरण में आवश्यक एवं उचित पक्षकार है?
4. क्यां यह दावा पक्षकारों के कुसंयोजन अथवा असंयोजन के कारण बाधित है?
5. क्या यह दावा पोषणीय है?
6. क्या प्र.क्र. 1/97 रामलाल विरुद्ध श्यामलाल में दिनांक 01.02.98 को प्रथम व्यवहार न्यायाधीश वर्ग–1, इन्दौर द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री इस प्रकरण में रेस्ज्येडिकेटा का प्रभाव रखती है?
7. क्या विनिर्दिष्ट सहायता की मांग किए बिना यह घोषणा एवं स्थाई निषेधाज्ञा का दावा नहीं चल सकता?
8. क्या वादी/प्रतिवादी (तथ्य बताना) के कारण अब इस प्रकरण में इस्टापड् (विबंधित) हैं?

बैंक प्रकरणों में वाद प्रारूप :

1. क्या वादी शाखा प्रबंधक को यह दावा प्रस्तुत करने का अधिकार है?
2. क्या प्रतिवादी–1 ने वादी से रुपये 15,000/– शार्ट टर्म कैश क्रेडिट लोन प्राप्त कर विलेख वादी के पक्ष में निष्पादित कर दिये थे?
3. क्या ब्याज की दर रुपये 15 प्रतिवर्ष प्रतिशत प्रति तीन माह के शेष रकम पर निर्धारित की थी व अनुबंधित हुई थी?
4. क्या वादी ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है यदि हाँ तो कब से किस दर से?
5. क्या प्रतिवादी–2 ने प्रतिवादी–1 के लिए वादी के पक्ष में (को एक्सटेन्सिव) सम विस्तीर्ण प्रतिभूति दी थी?
6. क्या प्रतिवादी–2 ने विवादित प्रलेखों पर जो हस्ताक्षर किये थे उन्हें वादी की ओर से समझा दिया था?
7. क्या प्रतिवादी–1 किश्तों से रकम संदाय करने की सुविधा प्राप्त कर सकता है? यदि हाँ तो किन शर्तों पर?
8. सहायता एवं वाद व्यय।

प्रोनोट प्रकरण में प्रारूप वाद प्रश्न :

1. क्या विवादित प्रोनोट प्रतिफल विहीन है?
2. क्या प्रतिवादी ने वादी से रुपये 5,000/– नगद उधार लेकर वादी के पक्ष में प्रोनोट निष्पादित कर दिया?
3. क्या वाद अवधि में है?
4. क्या प्रतिवादी वादी से कोई प्रतिकर प्राप्त करने का अधिकारी है?
5. क्या वादी साहूकार है? यदि हाँ तो क्या वादी ने साहूकारी अधिनियमों के प्रावधानों की शर्तों का पालन किया है? यदि नहीं तो प्रभाव?
6. क्या प्रतिवादी से वादी ने छल–कपट पूर्ण कृत्य कर प्रोनोट का निष्पादन करा लिया है?
7. क्या प्रतिवादी वादी के साथ अंतिम रूप से निर्धारित हिसाब (सेटल्ड एकाउन्ट) की पुनः परीक्षण (री–ओपनिंग) करा पाने का अधिकारी है?
8. सहायता एवं व्यय।

नोट :

1. वाद प्रश्न क्रमांक 5, 6, 7 तब ही बनेंगे जब विशिष्ट अभिकथन आदेश–6 नियम 4 के प्रावधानों के अपेक्षानुसार हो। सेटल्ड एकाउन्ट रिओपन तब ही होते हैं जब मिथ्या व्यपदेशन छल कपट आदि जैसी बातों का स्पष्ट शब्दों में उल्लेख हो कि किस प्रकार के छल कपट किया गया था। जैसे निम्न दृष्टांतों में बताया गया है।

   मांगीलाल विरुद्ध अब्दुल हमीद 1966 जे.एल.जे. 1193

   उत्तमसिंह विरुद्ध सरदार सिंह 1980 जे.एल.जे. 576

2. याद रहे प्रकरण के निराकरण की संपूर्ण नींव आपके द्वारा निर्मित होती है तथा आवश्यक वाद प्रश्न निर्मित नहीं किये जाते एवं प्रकरण का निराकरण कर दिया जाता है तो प्रकरण रिमांड होने की संभावना रहती है।
3. अवधि संबंधी वाद प्रश्न हर हमेशा यही बनेगा कि क्या वादी का वाद अवधि में है? ऐसा वाद प्रश्न नहीं बनेगा कि वादी का वाद अवधि बाह्य नहीं है? अथवा क्या वादी का वाद अवधि में नहीं है?

क्लेम केस के वाद प्रश्न प्रारूप

1. क्या प्रार्थीगण मृतक रामलाल के वैध उत्तराधिकारी होकर यह दावा प्रस्तुत करने का उन्हें अधिकार है?

2. क्या प्रार्थीगण मृतक रामलाल पर आर्थिक रूप से घटना दिनांक को निर्भर थे?

3. क्या रामलाल घटना दिनांक 01.01.1997 को विवादित बस क्रमांक ए.बी.सी. –01–234 में यात्री के रूप में इन्दौर से उज्जैन प्रवास कर रहा था?

4. क्या प्रतिवादी प्रार्थी–2 हीरालाल चालक ने प्रतिवादी प्रार्थी–1 पन्नालाल का वाहन क्रमांक ए.बी.सी.–01–234 को नियोजन के रूप में घटना दिनांक 01.01. 1997 को तीव्र गति, उपेक्षा अथवा उतावलेपन से चलाया व दुर्घटना में रामलाल की मृत्यु/रामलाल को गंभीर/साधारण उपहति उत्पन्न हुई?

5. क्या विवादित वाहन क्रमांक ए.बी.सी.–01–234/ए.बी.सी 05–678 पर प्रतिप्रार्थी क्रमांक2/क्रमांक 4 घटना दिनांक व समय को वाहन का चालक था?

6. क्या विवादित वाहन क्रमांक ए.बी.सी–01–234/ए.बी.सी.–05–678 का प्र. प्रार्थी क्रमांक 1/ प्रतिप्रार्थी–3 घटना दिनांक व समय वाहन का स्वामी था?

7. क्या वाहन क्रमांक ए.बी.सी.–01–234 तथा डी.ई.एफ.–05–678 के वाहन चालकों (प्र.प्रार्थी क्र. 2 एवं 4) ने उपेक्षा उतावलेपन अथवा तीव्रगति से चलाए एवं एक दूसरे के वाहन का टक्कर मारी तथा दुर्घटना कारित की। (कंपोझिट लाइबेलिटी)

8. क्या रामलाल विवादित वाहन क्रमांक ए.बी.सी. –01–234 में प्रवास ही नहीं कर रहा था।

9. क्या रामलाल को निःशुल्क कृतज्ञता वश वाहन चालक ने बैठाया था व इस कारण रामलाल/ (रामलाल के उत्तराधिकारी) क्षतिपूर्ती प्राप्त नहीं कर सकता/नहीं कर सकते?

10. क्या प्रतिप्रार्थी–1 व प्रतिप्रार्थी–2 ने बीमा पालिसी के शर्तों का उल्लघन किया है? यदि हाँ तो परिणाम?

11. प्रकरण में क्षतिपूर्ति का मूल्यांकन क्या हो?

12. क्या प्रार्थीगण/प्रार्थी ब्याज प्राप्त कर सकता है? यदि हाँ तो कब से किस दर से?

13. सहायता एवं व्यय।

न्याय की गरिमा वही बना रख सकता है जिसकी स्वयं की छवि स्वच्छ हो।

ए.के. माथुर, मुख्य न्यायाधिपति

IMPOSING OF CONDITIONS : SECTIONS 436-437-438-439 CR.P.C.

M.CR.C.NO. 6469/97

MURALIDHAR VS. STATE

The order was delivered by Hon'ble Shri Justice Dipak Misra (Jabalpur Bench). Dtd. 03-12-97

The accused applicant was being prosecuted by the police under different sections in addition to section 307 of the I.P.C. The accused was admitted to bail and while doing so the court imposed certain conditions, namely, the petitioners would not tamper with the witnesses; would appear personally in court on each date of hearing; and would not pick up quarrel with the informant. Apart form these conditions, it was also stipulated in the order that if any further case is registered against the petitioners the order granting bail would automatically stand cancelled and they would be taken to custody as if there has been cancellation of the order enlarging them on bail as contemplated under Section 439 (2) of the Code of Criminal Procedure.

The High Court referred to the provisions of the Section 439 of the Cr.P.C. and found that :

> "It is quite clear that conditions can be imposed under certain circumstance with definite purpose. Conditions can be imposed to secure the attendance of the accused who has been granted bail and to ensure that such person who has been set at liberty by the order of the court does not abuse the same by indulging in similar type of offence. The court also can impose certain other reasonable conditions if the interest of justice so warrants. While the power has been conferred on the Court to impose conditions while enlarging the accused on bail, the court has to keep itself alive to the proposition that a balance has to be maintained between the personal liberty of the accused and his availability for the purpose of investigation and trial. "
>
> "Impositions of conditions while granting bail can have many facets, A condition can be unreasonable and smack of arbitrariness. It may, in a given situation, totally tilt the balance in favour of the prosecution. In certain other situation, imposition of a condition can be absolutely harsh and tantamount to refusing the bail as it would be extremely difficult on the part of the accused to comply with the same."
>
> "The court has the jurisdiction to impose conditions but while doing so the court has to see that the conditions must have nexus with the investigation or they are intended to prevent a recurrence of the same offences.

Conditions must have sanction of law as well as reasonableness. A condition cannot be presumptuous and speculative."

"In the case at hand, the heart of the matter is whether stipulation of the condition as has been stated earlier has the sanction of law. Imposition of a condition or a stipulation having a futuristic spectrum has to flow from the provisions enshrined in the Code and must reflect prudent exercise of judicial discretion. As stated earlier, the learned Additional Sessions Judge has made the stipulation/condition inherent in the order which engulfs the process of cancellation of bail by a deeming of bail operates in a different and distinguishable sphere. An order granting bail becomes vulnerable and incurs the liability of cancellation if it is granted improperly and injudiciously or there are overwhelming supervening circumstances which warrants the cancellation of the order."

"Factors are taken into consideration while directing cancellation of bail and it is not cancelled in a mechanical manner. There has to be application of mind and consideration of all relevant circumstances. Infact, it is the result of an independent proceeding having different parameters."

"Before cancellation of bail granted in favour of an accused it is absolutely essential that the accused should be afforded an opportunity of hearing. A privilege conferred cannot be taken away without hearing. If by a mere registration of crime, it would entail a consequence of cancellation of bail, it would be the epitome of violation of natural justice and embodiment of unreasonableness."

●

O1 R.3 B AND 06.R4A M.P AMENDMENT

1992 JLJ 178 = 1992 MPLJ. 292

UMASHANKAR SHARMA VS. MANGAL SINGH

1. Counsel are heard on appellant's application dated 17.12.91 purporting to be under O. 1, R. 3B inserted in the Code of Civil Procedure, 1908, by a Madhya Pradesh Amendment Act.

2. The suit was with the heading "Suit for declaration of title and possession of land." in the relief clause the first relief was: "Delivery of possession of agricultural land." At paragraph 2 of the instant application it has been averred that the appellant does not have any agricultural land except the lands in dispute and that no ceiling case is pending in respect of his lands and that the appellant has no information of any such proceedings. Order 1, R. 3B runs as follows :

"3B. Conditions for entertainment of suits. -(1) No suit or proceeding for-

(a) declaration of title or any right over any agricultural land, with or without any other relief; or

(b) specific performance of any contract for transfer of any agricultural land with or without any other relief,

Shall be entertained by any Court unless the plaintiff or applicant, as the case may be, knowing or having reason to believe that a return under section 9 of the Madhya Pradesh Ceiling on Agricultural Holding Act, 1960 (No. 20 of 1960) in relation to land aforesaid has been or is required to be filed by him or by any other person before competent authority appointed under that Act, has impleaded the State of Madhya Pradesh as one of the defendants or non-applicants, as the case may be, to such suit or proceeding.

(2) No Court shall proceed with pending suit or proceeding referred to in sub-rule (1) unless, as soon as may be, the State Government is so impleaded as a defendant or non-applicant.

Explanation- The express "suit or proceeding" used in this sub-rule shall include appeal, reference or revision, but shall not include any proceeding for or connected with execution of any decree or final order passed in such suit or proceeding."

3. In the instant case clause (a) of sub-rule (1) of Rule 3B is fulfilled. However, the averment in paragraph 2 of the application does not bring the case under the following provisions of clause (b) of sub-rule (1) of R. 3B :

".....Unless the plaintiff or applicant, as the may be, knowing or having reason to believe that a return under section 9 of the Madhya Pradesh Ceiling on Agricultural Holdings Act, 1960, in relation to land aforesaid has been or is required to be filed by him or by any other person before competent authority appointed under that Act."

4. Shri Chaturvedi says that on his part he too does not have any material on the lines referred to in clause (b).

5. In the result, the application under O. 1, R. 3B C.P.C. is not tenable and is not at all necessary in this case. The application is dismissed.

●

CRIMINAL TRIAL

(1997) 8 SCC 732

KALPNATH RAI VS. STATE AND 9 OTHER CASES

Criminal Procedure Code, 1973- S. 465 - Error or irregularity in a sanction for prosecution. Held, prosecution not vitiated unless a failure of justice has been occasioned thereby. Merely because the defence raised this objection at the earliest opportunity not sufficient to vitiate the trial. Position under old Code compared. Criminal Procedure Code, 1898, S. 537.

In the corresponding provision under the old Code, 1898 the words "or any error or irregularity in any sanction for the prosecution" were absent. Legal position under the old Code, as settled by the decisions of various courts, was that any defect in sanction was not curable and hence the prosecution itself would have been void.

Parliament advisedly incorporated the word "any error or irregularity in any sanction for the prosecution" in Section 465 of the present Code as they

wanted to prevent failure of prosecution on the mere ground of any error or irregularity in the sanction for prosecutions. An error or irregularity in a sanction may, nevertheless, vitiate the prosecution only if such error irregularity has occasioned failure of justice.

Sub-section (2) of Section 465 of the Code is not a carte blanche for rendering all trials vitiated on the ground of the irregularity of sanction if objection thereto was raised at the first instance itself. The sub-section only says that "the court shall have regard to the fact" that objection has been raised at the earlier stage in the proceedings. It is only one of the considerations to be weighed but it does not mean that if objection was raised at the earlier stage, for that very reason the irregularity in the sanction would spoil the prosecution and transmute the proceedings into a void trial.

EVIDENCE ACT; SECTION 30 : Confession of accused. When can be used against co-accused. Conditions to be satisfied. Such a confession cannot be used as substantive evidence. It has only corroborative value.

Confessions which are admissible under the Evidence Act could be used as against a co-accused only satisfaction of certain conditions. The first condition is that there should be a confession i.e. inculpatory statement. Any exculpatory admission is not usable for any purpose whatsoever as against a co-accused should necessarily have been tried jointly for the same offence. In other words, if the co-accused is tried for some other offence, though in the same trial, the confession made by one is not usable against the co-accused. The third condition is that the confession made by one accused should affect him as well as the co-accused. In other words, if the confessor absolves himself from the offence but only involves the co-accused in the crime, while making the confession, such a confession cannot be used against the co-accused.

Even if no conditions are satisfied the use of a confession as against a co-accused is only for a very limited purpose i.e. the same can be taken into consideration as against such other person. It is now well settled that under Section 30 of the Evidence Act the confession made by one accused is not substantive evidence against a co-accused. It has only a corroborative value.

EVIDENCE ACT; SECTION 114 ILL. (g) - NON-PRODUCTION OF DAILY DIARY EFFECT OF : No doubt daily diary is a document which is in constant use in police station. But no prosecution is expected to produce such diaries as a matter of course in every prosecution case for supporting the police version. If such diaries are to be produced by prosecution as a matter of course in every case, the function of the police station would be greatly impaired. It is neither desirable nor feasible for the prosecution to produce such diaries in all cases. Of course, it is open to the defence to the move the court for getting down such diaries if the defence wants to make use of it.

SECTION 313 CR.P.C.; EXAMINATION OF ACCUSED : Section 313 of the Code is intended to afford opportunity to an accused "to explain any circumstance appearing in the evidence against him". It is trite that an accused cannot be confronted during such questioning with any circumstance which is not in evidence. Section 313 of the Code is not intended to be used as an interrogation. No trial court can pick out any paper or document from outside the evidence and abruptly slap it on the accused and corner him for giving an answer favourable or unfavourable.

SECTION 100 (4) CR.P.C.; CRIMINAL TRIAL : There can be no legal proposition that evidence of police officers, unless supported by independent witnesses, is unworthy of acceptance. Non-examination of independent witness or even presence of such witness during police raid would cast an added duty on the court to adopt greater care while scrutinising the evidence of the police officers. If the evidence of the police officer is found acceptable it would be an erroneous proposition that the court must reject the prosecution version solely on the ground that no independent witness was examined.

ARMS ACT, 1959 SECTIONS 25 AND 4 : Notification prohibiting possession of a knife having length of 7.62 cm. and a width of 7.2 cm. Accused found in possession of a knife having a length of 9.2". No averment in the charge that he possessed a knife of the description specified in the notification. Nor was there any indication in the document evidencing seizure of knife regarding its width. Held, accused is entitled to acquittal.

●

NOTIFICATION

1997 (2) MPLJ

Code of Criminal Procedure (2 of 1974), S. 11(3) read with S.32 Civil Judge on probation to have powers of Judicial Magistrate, Second Class : In exercise of the powers conferred by sub-section (3) of Section -11 read with section 32 of the Code of Criminal Procedure 1973 (Act No 2 of 1974), the High Court is pleased to direct that a person appointed as Civil Judge temporarily or on probation, shall stand invested with the powers of Judicial Magistrate of Second Class.

(Notification dated 22-09-1997, published in M.P. Government Gazette dated 31-10-1997, Part I, page 1887.)

●

OPINIONS AND VIEWS EXPRESSED IN THE MAGAZINE ARE OF THE WRITERS OF THE ARTICLES AND NOT-BINDING ON THE INSTITUTION AND FOR JUDICIAL PROCEEDING.